राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

डॉ० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थांक 154

महाकवि-धनदेश्वरप्रणीत

कामाभिनन्दनमहाकाव्य

सम्पादक

डॉ० दत्तात्रेय बालकृष्ण क्षीरसागर • ओमप्रकाश शर्मा

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज०)

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1985

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक

डॉ० पद्मधर पाठक

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

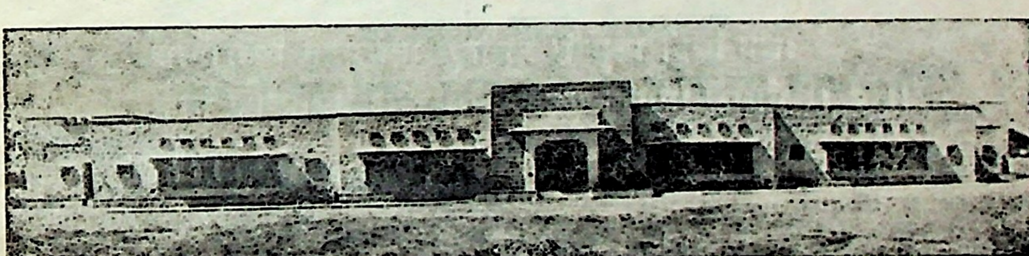
ग्रन्थांक 154

महाकवि-धनदेश्वरप्रणीत

कामाभिनन्दनमहाकाव्य

सम्पादक

डॉ० दत्तात्रेय बालकृष्ण क्षीरसागर • ओमप्रकाश शर्मा



प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज०)

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

1985

प्रथमावृत्ति 500 मूल्य रु. 17/-

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय तथा विशेषतः राजस्थान प्रदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डॉ० पद्मधर पाठक

ग्रन्थांक 154

प्रकाशक

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज.)

मुद्रक

कैलाशचन्द्र जैन, जैन प्रिण्टर्स, जोधपुर

विक्रमाब्द 2042 शकाब्द 1907

समर्पणम्

विहितसकलयत्नः ग्रंथसंरक्षणाय
मुनिजिनविजयेन्द्रः स्थापयामास पूर्वं ।
विदितमिह जनानां प्राच्यविद्याभिधं यत्-
अभिनवनवरूपं सत्प्रतिष्ठानभव्यम् ।। १ ।।

वाग्देव्याः चरणाब्जस्यन्दिमधुना निष्यन्दितं यन्मनः
विद्वद्वृन्दमरालराजितपदं यज्जीवनं धन्यताम् ।
आगात्तस्य महात्मनः सुरुचिरं संस्मृत्य दिव्यं यशः
कामं काव्यमिदं श्रयेत्स्मृतिपथं पुण्यात्मनः कामये ।। २ ।।

विषयानुक्रम

दो शब्द

पौराणिक कथानक को उपजीव्य बनाकर महाकाव्य प्रणयन की संस्कृत साहित्य में एक लम्बी परम्परा रही है। महाकवि धनदेश्वर कृत प्रस्तुत **कामाभिनन्दनमहाकाव्य** इसी परम्परा का वैदर्भी शैली का तथा कालिदास के काव्यत्व का अनुगामी महाकाव्य है।

उषा और अनिरुद्ध के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर सरस शैली में प्रणीत इस महाकाव्य की यद्यपि दोनों ही उपलब्ध प्रतियाँ अपूर्ण हैं, तथापि काव्य की नवीनता की दृष्टि से तथा विद्वज्जगत् में केवल नामतः प्रसिद्ध कृति के प्रथम प्रकाशन की दृष्टि से प्रस्तुत सम्पादन का प्रयत्न असंदिग्धरूप से प्रशंसनीय है।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के वरिष्ठ शोध सहायक डॉ. क्षीरसागर तथा श्री शर्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया यह सम्पादन 'विदुषां प्रीतये' सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। विद्वद्वर प्रो. रामचन्द्र द्विवेदी ने इस काव्य पर प्राक्कथन लिखकर इसे और उपादेय बना दिया है, अतएव उनके सौजन्य के लिए हम आभारी हैं। रही संपादकों की बात—उनकी लगन, उनका परिश्रम और उनका उत्साह सर्वथा सराहनीय है।

21 जून, 1985

पद्मधर पाठक

प्राक्कथन

डॉ० डी० बी० क्षीरसागर तथा श्री ओमप्रकाश शर्मा ने महाकवि धनदेश्वर प्रणीत महाकाव्य 'कामाभिनन्दनमहाकाव्य' का राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान के माध्यम से सम्पादन एवं प्रकाशन कर अत्यन्त स्तुत्य कार्य किया है। इसके लिए डॉ० क्षीरसागर एवं श्री शर्मा तथा प्रतिष्ठान के अधिकारी विद्वज्जगत् की हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं। वस्तुतः संस्कृत का विशाल साहित्य या तो लुप्त हो चुका है या पाण्डुलिपियों में सिसक रहा है। इसका जितना शीघ्र उद्धार हो सके वह करना हमारे राष्ट्र का संकल्प होना चाहिए अन्यथा यह राष्ट्रीय धरोहर क्रमशः कालकवलित होती रहेगी और भारतीय साहित्य के अनेक पृष्ठ अपूरणीय रिक्तियों से भरे रहेंगे। इस सन्दर्भ में मैं इस महाकाव्य के प्रकाशन का हार्दिक स्वागत करता हूँ। जिन दो अपूर्ण प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन प्रस्तुत किया गया है उसके अतिरिक्त यदि और कोई पूरक प्रति मिल सकी तो हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी।

इस महाकाव्य में बारह सर्ग हैं। प्रथम दो सर्ग में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के ज्ञान एवं मुक्ति के समान साहचर्य का निरूपण करने के बाद कवि अपने महाकाव्य की मूल वस्तु, उषा-अनिरुद्ध के प्रणय-वर्णन में शेष सर्गों को समर्पित करता है। यही काम का अभिनन्दन है। कवि ने कोई भी अवसर महाकाव्योचित विभिन्न प्रसङ्गों की योजना में नहीं छोड़ा है। इस प्रकार अलंकृत काव्य-शैली जितने पारम्परिक विधिविधान हैं उन सभी का मञ्जुल निदर्शन इस महाकाव्य में प्राप्त होता है। इसे बानगी के लिए सम्पादकों ने अपने पुरोवाक् में प्रस्तुत किया है।

कुछ वर्षों पहले मैंने एक पद्य लिखा था—

कालिदासेन कविना यद्वाग्वर्त्म निषेवितम।
सर्वे तदेव सेवन्ते कवित्वं शाश्वतं पदम्॥

संस्कृत के साहित्यकार पर वाल्मीकि, व्यास या कालिदास की छाया और प्रभाव न हो, यह लगभग असम्भव है। वे ही साहित्यिक उत्कर्ष के मानक और उत्तुङ्ग शिखर हैं। शृङ्गार के सन्दर्भ में कविकुलगुरु परम प्रमाण हैं। स्वभावतः धनदेश्वर ने अपने कुलगुरु का पदानुसरण किया है। कालिदास की

शैली का प्रसाद, शृङ्गार रस का मसृणभावेन, उपमा आदि साम्यमूलक अलंकारों का विविधता से प्रयोग, जीवन की आनन्दमयता की दृष्टि, मानवीय सन्दर्भ सभी कुछ इस महाकाव्य में हैं। कहीं-कहीं कवि किसी भाव विशेष से आन्दोलित होकर उसकी दूसरे पद्य में पुनरावृत्ति भी कर देता है, जैसा कि प्रथम सर्ग श्लोक ३३-३४ में। कहीं वह नैषधकार की तरह पञ्चार्थपरक पद्य का निर्माण कर अपने पाण्डित्य को सिद्ध करने में भी आकुल दीखता है तो कहीं वह कविकुल गुरु के कथन को ज्यों का त्यों अपने शब्दों में उतार देता है, जैसा कि प्रथम सर्ग के ही ३६ वें पद्य में। पर कहीं भी वह प्रसन्न शब्दशय्या से शिथिल नहीं होता। प्रेम के सम्बन्ध में उसका दर्शन तो वस्तुतः अद्भुत है। इस सम्बन्ध में दो पद्यों का उल्लेख करना अनुचित न होगा—

गुणानुबन्धे न हि रूपसंपन्नरूपसंपद्यपि हा गुणाः स्युः।
सति द्वये प्रेम न तत्तु दैवाद्द्वयोस्तयोरेव समस्तमस्ति॥

गुण होते हैं तो रूप नहीं, रूप होता है तो गुण नहीं, दोनों हों तो प्रेम नहीं; पर एक साथ मिल जाये तो कहना ही क्या? नारी और नर का अन्तर होने पर भी प्रेम उनका अद्वैत हो जो उपाधि से द्विधा दिखाई देता है—

उमामहेशाविव तावभिन्नौ दृश्येऽपि नारीनरभावभेदे।
प्रेमैव तन्मूर्तमुपाधिभेदाद् द्विधा दरीदृश्येत एवमूहे॥

एक बार पुनः मैं इस महाकाव्य के प्रकाशन के लिए सम्पादकद्वयी तथा प्रकाशक, प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ० पद्मधर पाठक का अभिनन्दन करता हूँ।

२३-५-१९८५

रामचन्द्र द्विवेदी
आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पुरोवाक्

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

(1)

संस्कृत साहित्य की महाकाव्य-परम्परा में काव्य का उद्देश्य चाहे किसी वंश विशेष के ऐतिह्य वर्णन का हो अथवा व्याकरण या दर्शन जैसे दुरूह विषयों के आश्रय से पाण्डित्य प्रदर्शन का रहा हो वह "कान्तासम्मिततयोपदेश" के सरसतापादन की शैली से सम्पृक्त रहा है और प्रारम्भिक काल से अतिविस्तृत परम्परा पर यदि दृष्टि डालें तो महाकवि वाल्मीकि से आठवीं शती तक के महाकाव्यों में कहीं अर्थवैचित्र्य, कहीं प्रासादिक रसानुभूति, कहीं पदलालित्य तो कहीं इन तीनों ही विशेषताओं का समवाय स्पष्टतः स्फुरित हुआ है । यद्यपि काव्य के रमणीयत्व अथवा रसानुपूरित सहज प्रतीति उत्तरवर्ती या ह्रासोन्मुखी काल में कलापक्ष के प्राधान्य से कुण्ठित-सी हुई और कवियों के निकष गद्य-साहित्य में काल सापेक्ष काव्यचेतना के प्रौढत्व के दर्शन हुए, तथापि उत्तरवर्ती काव्यचेतना का रुझान भावपक्ष की ओर ही अधिक प्रतीत होता है ।

उत्तरवर्ती काव्यचेतना के वैशिष्ट्यों में अधिकांशतः कालिदासीय शैली का अनुसरण स्वाभाविक ही था, परन्तु कहीं भारवि का अर्थ-गौरव भी है तो कहीं माघ की तरह चित्रकाव्य और पाण्डित्य की अभिव्यक्ति की रुचि भी रही है । फिर भी इन्हें न ही नैषध की तरह विद्वद्-औषध की श्रेणी में रखा जा सकता है और न ही केवल चित्रमयता के प्राधान्य से अवर काव्य की उपेक्षा के ये विषय हैं । परवर्ती कवियों की विशेषताओं में कवित्व से इतर मौलिकता की खोज स्वयं शोध का विषय हो सकती है परन्तु पूर्व-कवियों की जो-जो विशेषताएँ उन्हें रुचिकर लगीं, उन्हें आत्मसात् करने का सरस प्रयत्न किया गया है । विशेषतः ऐतिहासिक काव्यों में यथा-जगजीवन भट्टकृत अजितोदय, माधवभट्ट-कृत सूरसिंहवंशप्रशस्ति (अप्रकाशित), विल्हणकृत विक्रमांकदेवचरित अथवा रणछोड़ भट्टकृत राजप्रशस्ति में घटनाप्राधान्य अपनी विशेषता है परन्तु एतादृश महाकाव्यों में तथा पौराणिक इतिवृत्तों पर आधारित उत्तरवर्ती महाकाव्यों में भी "रमणीयत्वप्रतिपादकशब्दः काव्यम्" को, उसके परिभाषारूप में मान्य होने से कहीं पहले ही, बहुत प्रभावी ढंग से आत्मसात् किया है ।

परवर्ती पर पूर्ववर्ती का प्रभाव अवश्यम्भावी है या यों कहिये वह परवर्ती का ऋणानुबन्धत्व है । अश्वघोष-कालिदासोत्तर महाकाव्यों से अधुनातन

'नेपालसाम्राज्यमहोदयम्' अथवा डॉ. सत्यव्रत शास्त्री कृत 'इन्दिराचरितमहाकाव्यम्' तक में पूर्व-परम्परा-प्रभाव अविच्छिन्न रूप से ग्रहण किया गया है। जैसा कि प्रस्तूयमान महाकवि का ही कथन है—

ख्याता: पुराणेषु कथास्तथापि ।
युक्त्या कवीनां सरसा भवन्ति ।।

प्रत्येक कवि की सरसता की अपनी दृष्टि है और यही नवीन सर्जन के काव्यास्वाद का प्रमुख आधार है और नित्य सर्जनशीलता का कारण भी ।

कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से प्रस्फुटित, पूर्व-महाकाव्यों के प्रभाव से अनुप्राणित तथा रमणीय-प्रतीति को अनुभवत: प्रस्तुत करने वाली महाकाव्यों की उत्तरवर्ती परम्परा में महाकवि धनदेश्वरप्रणीत "कामाभिनन्दन-महाकाव्यम्" 'युक्त्या कवीनां सरसा भवन्ति' का एक सरस कविहृदय का अभिनव प्रस्फुटन है ।

(2)

प्रस्तूयमान महाकाव्य की उपलब्धता का संकेत थियोडोर आफ़्रेट के बृहत्सूचीपत्र (भाग 3, पृ. 58) में 'कामनन्दाभिधान' अथवा 'कामानन्दकाव्य' तथा धनद (धनदेश्वर) का प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता के रूप में उल्लेख प्राप्त है। मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित नवीन बृहत्सूचीपत्र (भाग 3) में 'कामनन्दाभिधान' अथवा "कामा (?)" तथा भाग 9 में धनद का उल्लेख किया गया है। इन सन्दर्भों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं पर भी प्रस्तुत महाकाव्य तथा उसके रचयिता का कोई भी सन्दर्भ उपलब्ध नहीं हुआ है। उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर महाकाव्य की एक प्रतिलिपि भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पुणे से उपलब्ध हुई है।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर सङ्ग्रह में इसी महाकाव्य की एक अन्य प्रतिलिपि प्राप्त हुई है। दोनों ही प्रतिलिपियों के प्रतिसर्ग-समाप्ति पर उपलब्ध होने वाली पुष्पिकाओं में महाकाव्य को 'कामनन्दाभिधान' नाम से अभिहित किया गया है परन्तु प्रतिष्ठानीय प्रतिलिपि के प्रारम्भिक पत्र पर तथा शेष प्रत्येक पत्र के बायें भाग पर 'कामाभिनन्दन महाकाव्याभिधान' का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। स्वयं महाकवि ने इसे 'मुरजित्कथा' (1/4) अथवा 'मुरजिच्चरित्र' (1/5) नाम से भी अभिहित किया है। अत: 'कामानन्दाभिधान' के संशयातीत न होने से तथा 'कामनन्दाभिधान' से भी अधिक स्पष्टत: उल्लेख होने से प्रस्तुत महाकाव्य का "कामाभिनन्दन-महाकाव्य" यह नामकरण अधिक युक्तियुक्त तथा रुचिकर प्रतीत होता है।

(3)

कामाभिनन्दन महाकाव्य के रचयिता महाकवि धनदेश्वर का नामतः उल्लेख प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर अन्तिम पद्य में प्राप्त है। तदनुसार वे काशी निवासी कश्यपगोत्रीय रुच्छरङ्ग व हीरादेवी के पुत्र हैं तथा उनके विशेषण 'त्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालि' से उनका शाक्त होना भी प्रमाणित है। यथा—

श्रीकाश्यां शिवदश्रियां कविमधि श्री रुच्छरङ्गो पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽ सूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण सुखदः सर्गोऽभवत्पञ्चमः ॥ 5/48

महाकवि के पिता रुच्छरङ्ग (वच्छरङ्ग ? 10/55) के लिये प्रयुक्त 'श्रीमान्राजसमाजपूजितपदः' (2/51) जहाँ उनके वैदुष्य और प्रतिष्ठा का परिचायक है, वहाँ स्वयं महाकवि के लिये 'गुर्जर राजाओं द्वारा मान्य' ('मान्यं गूर्जरभूभृतां कविमधि' 4/51) यह विशेषण भी 'एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति' को अनायास प्रमाणित करता है। वैसे कवि आत्मश्लाघा से भी मुक्त नहीं है' यह 'ऽऽसूत प्रसूयं सुतम्' से प्रतीत होता है।

काव्य की समाप्ति पर कवि ने वंश परिचय अवश्य दिया है। खण्डितावस्था के कारण यद्यपि निश्चयात्मिका स्थिति संदिग्ध है तथापि 'विदुषां मुदे' उस अंश को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

विद्यारण्यमुनिप्रसादसुभगोऽनन्तोऽस्य चन्द्रः सुत—
स्तस्य श्रीहरिपाल ………[रुच्छ] रङ्गोऽभवत् ।
तस्याहं धनदः कवित्वरसिकः श्रीदेवतां चिन्तना
निर्माणं मम कामनन्दनमहा ………………………॥ 12/48

अर्थात् विद्यारण्य मुनि के प्रसाद से अनन्त, अनन्त के चन्द्र व चन्द्र के हरिपाल पुत्र हुए। हरिपाल के उल्लेख के पश्चात् त्रुटितांश में एक अथवा दो पूर्वजों को मानने पर रुच्छरङ्ग 5वीं या 6ठी पीढ़ी के व्यक्ति सिद्ध होते हैं। अतः धनदेश्वर का समय-निर्धारण विद्यारण्य के परिप्रेक्ष्य में ही निश्चित करना श्रेयस्कर है।

आफ्रेट के वृहत्सूचीपत्र (भाग 1, पृ. 574) में विद्यारण्य नामक तीन व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है—

1. विद्यारण्य तीर्थ—सांख्यसूत्र के टीकाकार विश्वेश्वरदत्त के गुरु
2. विद्यारण्य योगिन्—नैषधीय चरित्र के टीकाकार
3. विद्यारण्य अथवा माधव—सायण के भ्राता

वृहत्सूचीपत्र के [भाग 1, पृ. 706) आधार पर सांख्यतरंग नामक टीका के टीकाकार विश्वेश्वरदत्त का देहावसान बनारस में 1852 वि. में होने का उल्लेख है; अतः उनके गुरु विद्यारण्य की अधिकतम पूर्वसीमा 19 वीं० शती का प्रारम्भ सिद्ध होती है परन्तु उपलब्ध प्रतियों में से भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान की प्रति का लिपिकाल 17 वीं शती का पूर्वार्ध है; अतः धनदेश्वर के पूर्वजों ने जिस विद्यारण्य से प्रसाद प्राप्त किया, उनका विश्वेश्वरदत्त के गुरु विद्यारण्य से कथञ्चित् भी सम्बन्ध हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता है।

आफ्रेट के संकेतानुसार नैषधीयचरित के एक टीकाकार विद्यारण्य योगिन् हैं परन्तु उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर वास्तव में टीकाकार नरहरि[1] हैं जिन्होंने अपने गुरु विद्यारण्य की कृपा से उक्त टीका की रचना की। दक्षिण भारतीय टीकाओं में नरहरिकृत टीका प्राचीनतम मानी जाती है इनका समय 13 वीं शती का पूर्वार्ध निश्चित किया गया है।

परन्तु महाकवि का काशीनिवासी होना और गूर्जर भूभृतों के द्वारा मान्यता प्राप्त करने के संकेत इस तथ्य के लिए कथमपि अनुमति नहीं दे सकते कि धनदेश्वर के पूर्वजों के गुरु विद्यारण्य और नरहरि के गुरु विद्यारण्य में नाम साम्य के अतिरिक्त समय या स्थान का किसी प्रकार का समीकरण जोड़ा जा सके।

सायणाचार्य के भ्राता माधव, जिन्होंने संन्यास के पश्चात् विद्यारण्य अभिधान ग्रहण किया था, का समय 14 वीं शती का पूर्वार्द्ध है। यदि धनद के पूर्वजों को इनका कृपापात्र मान लिया जावे तो अनन्त से पाँचवीं या छठी पीढ़ी में धनदेश्वर की स्थिति सम्भव है; अतः महाकाव्य के बारहवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में निर्दिष्ट प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामक उनके आत्मजों के समय निर्धारण होने तक तथा अन्यान्य प्रमाणों के उपलब्ध न होने की अवस्था में उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर महाकवि धनदेश्वर की स्थिति 16 वीं शती के उत्तरार्द्ध में स्वीकार की जा सकती है।

(4)

कामाभिनन्दन महाकाव्य का सम्पादन जिन दो अपूर्ण प्रतियों के आधार पर किया गया है, उनका विवरण इस प्रकार है—

1. प्राप्ति स्थान—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
   अधिग्रहणाङ्क—23488 ; माप—26×10 cms.
   पत्र संख्या—58 ; पंक्ति—8 ; अक्षर—30-35
   समय—18 वीं शताब्दी

---

1. द्र. डॉ. ए.एन. जानी:—A critical study of श्रीहर्ष's नैषधीय चरितम्; Oriental Institute, Baroda. 1957; पृ. 79.

इस प्रति में 11 वें सर्ग के 49 वें श्लोक तक ही पाठ उपलब्ध है। प्रथम पत्र पर ही पृष्ठ सं. 58 के निर्देश से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत प्रतिलिपि किसी अपूर्ण प्रति के आधार पर ही लिखी गई है। इस प्रति को सम्पादन में "अ" से निर्दिष्ट किया गया है।

"ब" प्रति—प्राप्ति स्थान-भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पुणे

अधिग्रहणाङ्क – B.D. 375 ; माप 20×8.5 cms.

पत्र संख्या—49 ; पंक्ति 1-9; अक्षर—40-45

समय – 17 वीं शताब्दी

इस प्रति की विशेषताओं में पृष्ठ मात्रा का प्रयोग और प्रतिलिपि के पश्चात् किसी विद्वान् के द्वारा संशोधित होना महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह प्रति पूर्ण है तथापि 11 वें सर्ग के 63 वें श्लोक से अन्तिम सर्ग 12 के समाप्ति पर्यन्त का पाठ अर्धखण्डितावस्था में उपलब्ध है। दोनों ही प्रतियों की अपूर्णता, प्रतिसर्ग श्लोकों का न्यूनाधिक्य तथा उपलब्धांश में कतिपय अंश दोनों ही प्रतियों में अनुपलब्ध होने से सम्पादन में किसी एक प्रति के पाठ को आदर्श न मानते हुए दोनों प्रतियों में उपलब्ध तत्तद् पाठ को स्वीकार करना आवश्यक माना गया है। दोनों ही प्रतियों में उपलब्ध श्लोक संख्या को निम्न रूप से दर्शाया जा सकता है—

सर्ग संख्या	'अ' प्रति	'ब' प्रति
1	32	43
2	51	44
3	51	51
4	41	41
5	48	49
6	43	46
7	62	59
8	79	77
9	63	62
10	56	52
11	49 (अपूर्ण)	64
12	अनुपलब्ध	50

उपर्युक्त स्थिति में सम्पादित पाठ में से तत्तद् प्रति में अप्राप्त अंश को निम्न सारिणी में देखा जा सकता है—

पाठ-भेद निदर्शन सारिणी

सर्ग संख्या	सम्पादित पाठ (श्लोक संख्या)	'अ' प्रति में अप्राप्त अंश	'ब प्रति में अप्राप्त अंश
प्रथम	1–43	33 का उत्तरार्द्ध एवं 34 का पूर्वार्द्ध	—
द्वितीय	1-51	——	19 से 25
तृतीय	1-51	——	——
चतुर्थ	1-41	7-12	—
पञ्चम	1-48	——	——
षष्ठ	1-47	—	41 वां
सप्तम	1-62	—	—
अष्टम	1-79	—	62 वां
नवम	1-64	—	20 से 21 वाँ
दशम	1-55	—	30 वां, 34 वां
एकादश	1-63	18 वां, 51 से 63	16 वां
द्वादश	1-50	अप्राप्त	—

(5)

द्वादश सर्गात्मक प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कवि की काव्य-प्रवृत्ति (1-5) व आराध्य श्रीकृष्ण की प्रशंसा (6-21) की गई है। कृष्ण-स्तुति में पूतना प्रसङ्ग (10) कालिय-कथा (12), गोवर्धन-धारण (13), रासक्रीडा (14), कंसवध (16), रुक्मिणी-हरण और शिशुपालवध (19), अर्जुन को विराट् स्वरूप का दर्शन (20) व अवतार प्रशंसा के अन्त में सुन्दरी-विमोचन (21) का वर्णन है। ये सभी पौराणिक प्रसंग विना किसी विशेष सन्दर्भ के केवल अवतार प्रशस्ति-परक ही हैं ।

आगामी (22-41) श्लोकों में श्रीकृष्ण के अधिष्ठान द्वारिकापुरी का बहुत ही सजीव चित्रण हुआ है। पौर-जनों की संगीत प्रियता व मृदङ्गों की मन्द्र-मधुर ध्वनि (24), पुरजनों की समृद्धि (26-27) चन्द्रिका से धवलित हर्म्य (29-30) के वर्णन के बाद परस्परासक्त युवाओं की चित्तवृत्ति का वर्णन बहुत ही सजीव बन पड़ा है। पुर-विलासनियों के सौन्दर्य (33-34) व हाट-बाजार की समृद्धि (36-38) में जहाँ श्रीकृष्ण का वास है, वहाँ दुःख हो भी कैसे सकता है। केवल आनन्द को जन्म देने वाली अर्थत्रय की साधिका, तापत्रय की हारिका, अनिष्ट की कथाओं से विरहित द्वारिकापुरी में वाद केवल

तात्त्विक है, सद्गुणों के लिए गृध्नुता है, दोष के लिए द्वेष, पाप की क्षति एवं जल की ही जड़ता है :—

> नित्यानन्दं सुवाना जनिरजनि नृणां सर्वदाऽर्थत्रयस्य,
> क्वानिष्टानां कथा स्यामभवदभवनं लोकतापत्रयस्य ।
> चिन्तातत्त्वस्य वादः श्रुतिविषयभवो गृध्नुता सद्गुणानां,
> द्वेषो दोषेषु पापे क्षतिरपि जडता केवलं वारिणि स्यात् ।। 1/42

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में (1-3) शुद्ध ज्ञान व मुक्ति के साहचर्य की तरह रुक्मिणी का श्रीकृष्ण से साहचर्य सहज ही भारतीय चिरन्तनता का स्मरण कराता है ।

> ज्ञानस्य शुद्धस्य यथैव मुक्ति-
> र्हरेस्तथाभूत् सहचारिणी सा ।

रुक्मिणी के दोहदवर्णन (5-7) व तत्पश्चात् त्रिभुवन को आनन्दित करने वाले प्रद्युम्न के जन्म को (8-9) उपस्थित किया है । प्रद्युम्न का लालन-पालन, उसका विद्याध्ययन तथा रति के साथ विवाह (10-14) को राम के द्वारा सीता के साथ हुए विवाह से धात्रीपवित्रीकरण की उपमा दी गयी है। प्रद्युम्न का गुणरूपवर्णन (17) और तत्पश्चात् (18-42) रति और प्रद्युम्न का विहार, मृगयावर्णन (20-26), रैवतक व उज्जयन्त पर्वत (29-30) तथा त्रिवली-रेखा की तरह (32-33) आभासित होनेवाली नदी का वर्णन है । रति-श्रम को हरण करनेवाला मलयानिल और गिरिगह्वरों में रममाण सिद्धांगनाओं का वर्णन कालिदास के प्रभाव को स्पष्टतः लक्षित करता है—

> सिद्धाङ्गनानां गिरिगह्वरेषु
> सुवर्णरेखा भ्रमिमञ्जुलेषु ।
> रतिश्रमः पुष्पितकाननेषु
> निरस्यते द्राग्मलयानिलेन ।। 2/34 ।।

सघन वृक्ष और मत्तभ्रमरों से सुवासित वन (35-36), पिकावलियों का मधुरगुञ्जन (37) और काम को प्रकाम करने वाले वसन्त ने रति और प्रद्युम्न के हृदय में ऐक्यभाव जागृत न किया हो तो ही आश्चर्य है । रति-प्रद्युम्न का पूर्व-राग (43-50) उनके मानसिक ऐक्य को विगलितवेद्यान्तर स्थिति में ला देता है—

> ऐक्यं मनोभ्यां न हि केवलं तौ
> गतौ वपुर्भ्यामपि कान्तिमद्भ्याम् ।। 2/49 ।।

तृतीय सर्ग के प्रारम्भ में मानस सरोवर की मन्थरगति राजहंसी की तरह गर्भविक्लवा रति (1-3) और उसकी दोहदावस्था (4-5) को संकेतित किया

है। रति के द्वारा देवाङ्गना और ऋषियों को हर्षित करने वाले (8-14) पुत्र-रत्न की प्राप्ति (7) व उसके अनिरुद्ध नामकरण का प्रसङ्ग है। माता की गोद से पिता की गोद में और पिता की गोद से कुट्टिमांगण में बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ करते हुए अनिरुद्ध का स्वभावोक्ति मूलक वर्णन (18-23) बहुत ही सजीव बन पड़ा है—

स मातुरुत्सङ्गतलात्पितुर्व्रजन्
पितुस्तथा मातुरयं मुहुर्मुहुः ।
अनारतं प्रेम ततान तावपि
प्रमोदमुच्चैरभिजग्मतुर्नवम् ।। 3/20

अनिरुद्ध का यौवन तथा विद्याध्ययन (28) और पुर-ललनाओं का उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण भी (30-32) सामान्य प्रतीत होता है, क्योंकि सुराङ्गनाएँ भी उसके लोकोत्तर सौन्दर्य पर स्वयं मुग्ध हो जाती हैं (34)। पुरुषोचित समस्त सौन्दर्य के प्रतीक अनिरुद्ध और रति रात्रि में स्वप्न में परस्पर का दर्शन करते हैं। यहीं पर कवि द्वारा भविष्य की घटनाओं की सूचना भी कितनी सामयिक है :—

किमिव न हि विभाव्यं कर्मणां प्राक्तनानाम् ।। 3/38 ।।

उषा के स्वप्न-दर्शन के पश्चात् (38-50) अनिरुद्ध के पूर्वराग का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। उषा का रूप (39-40) उसकी प्राप्ति के उपाय (41) कथन के पश्चात् प्रकृति के उपादानों से स्वप्नदृष्ट उषा के अंग-प्रत्यंगों की तुलना को उपस्थित किया है। अनिरुद्ध का मन कन्दुक की तरह उत्क्षेप-अवक्षेप की स्थिति में है, फिर भी उसे आशा है कि कभी न कभी उषा से अवश्य ही मिलन होगा—

विधिरभिमतमर्थं साधयिष्यत्यवश्यम् ।। 3/49 ।।

ऐसे में चित्रफलक पर प्रिया के चित्र बनाने में और देखने में ही सारा समय व्यतीत होना है (50)। तब रात्रि की निद्रा की सम्भावना ही कहाँ रहती है (49) ?

अनिरुद्ध के द्वारा बनाए गए उषा के चित्र को देखकर उसकी सखी चित्रलेखा नामक योगिनी के अवतरण की घटना को मूलकथा से चौथे सर्ग के प्रारंभ में सम्बद्ध किया है। अनिरुद्ध के द्वारा (1-5) चित्रलेखा का स्वागत और तत्परता से उसके आगमन की पृच्छा को दर्शाते हुए स्वागत की भारतीय परम्परा के कवि दर्शन कराते हैं (6-9)—

न महता क्रियते ह्यवधीरणा ।

अनिरुद्ध के कुल और गुण-रूप की चित्रलेखा द्वारा प्रासङ्गिक प्रशंसा

(11-14) के बाद उषा के चित्र को देखकर स्वयं के अवतरण का रहस्य वह प्रकट करती है (15-16)। स्वप्न में उषा-दर्शन के प्रसङ्ग का अनिरुद्ध द्वारा वर्णन (20-25) करते हुए अनिरुद्ध की पूर्वरागावस्था का (26-30) वर्णन किया हुआ है। चित्रलेखा अनिरुद्ध के लिए तरणि की तरह है (34), उसके दर्शन से ही अपना मनोरथ सिद्ध हुआ सा प्रतीत होने लगता है। अनिरुद्ध का प्रलाप (34) व पूर्वराग में उसकी मानसिक दशा को देखकर चित्रलेखा उषा के विषय में उसकी जिज्ञासा तृप्ति के लिए उद्यत होती है (39)। उषा की प्राप्ति-रूप मनोरथ की सिद्धि के लिए चित्रलेखा रूप साधन के उपलब्ध होने से इस सर्ग का मनोरथ-साधन यह नामकरण उचित हो प्रतीत होता है।

अनिरुद्ध की उषा सम्बन्धो जिज्ञासा की चित्रलेखा द्वारा शान्ति 5वें सर्ग का विषय है। प्रह्लाद से प्रारम्भ होने वाली वंश-परम्परा में बाण (1-4) के राज्य की राजधानी शोणितपुर (5) ज्वलनावृतिदुर्गम और शत्रुओं से अभेद्य है। बाणसुता उषा (6) गुणशालिनो व पार्वती की उपासिका है। उषा को पार्वती का वर प्रदान करना (7-8) तथा उषा द्वारा रात्रि में स्वप्न में अनिरुद्ध के दर्शन का पूर्वावतरण इससे पूर्व अनिरुद्ध की स्वप्न चर्चा के प्रसङ्ग में ही सूचित किया है। "मुञ्च-मुञ्च" कहती हुई उषा मूच्छित होती है और कठिनता से ही कम-लिनी पत्र से हवा किए जाने पर उसकी चेतना जागृत होती है (9-12)। चित्र-लेखा द्वारा स्वप्न के विषय में पूछे जाने पर वह चाह कर भी कुछ नहीं बता सकती (13-14), काम से लज्जित होते हुए भी (15) वह स्वप्न-वृत्तान्त कहने के लिए (16-17) उद्यत होती है। "मेरे हृदयाधिष्ठान में वह कौन बसा है, मैं नहीं जानतो (18)" कहती हुई अपनो सखो से अनिरुद्ध से चित्र बनाने का आग्रह करती है क्योंकि उसका शरीर कम्पायमान है और कर-तूलिका चल नहीं सकती (19)। ऐसे समय में सखी का तो यह दायित्व ही है कि वह सहा-यता करे। चित्रलेखा विभिन्न देवगण तथा यक्षों के चित्र बनाती जाती है लेकिन उषा उन्हें निरन्तर अस्वीकार करती रहती है। अन्त में अनिरुद्ध का चित्र देखकर उसके अपाङ्ग तरलित हो जाते हैं। और वह पराङ्मुखी हो जाती है (34)। यह समस्त वृत्तान्त अनिरुद्ध से कहती हुई चित्रलेखा उसे उषा के जीवन का आधार बनने के लिए प्रार्थना करती है (37-38) और उषा के पास अनिरुद्ध को ले जाने के लिए उद्यत होती है (42)।

अनिरुद्ध चित्रलेखा के साथ वायु प्रवास करते हुए शोणितपुर में पद्मिनियों के विकासोन्मुख होते-होते भ्रमरों के ललित गान से गुञ्जायमान प्रमद वन में प्रवेश करता है।

षष्ठसर्ग प्रकृति वर्णन और कवि द्वारा किए गए रूपकालङ्कार के सुन्दर प्रयोगों से अपनी अलग विशिष्टता लिए हुए है। प्रमदवन में सर्वत्र काम

साम्राज्य है (2), स्फटिक भूमि पर पानी समझ कर कूदने वाले हरिण-शावक (3), गिरती हुयी जलधाराओं से होने वाला इन्द्र-धनुष का आविष्कार और हेमकदलियों से ध्वनित होने वाली प्रमदवन की उपभोग योग्यता को जहाँ कवि ने पाँच पद्यों के कुलक में निबद्ध किया है वहाँ तीन पद्यों के विशेषक से प्रसूनों के भृङ्ग-कटाक्ष, पिकवधुओं का गुञ्जनात्मक मधुर आलाप (6), कपोतों का उत्कूजन (7) व उससे ध्वनित होने वाली निर्जनता जो कामियों के लिए उपकारक है, का संकेत किया है। रति के लिए उन्मुक्त उद्यत वनिता की तरह वाटिका भी कम स्पृहणीय नहीं है (8)। ऐसे सरस वातावरण में प्रियतमा के ललिताङ्गसङ्ग की कामना न हो तो ही आश्चर्य है (9)।

प्रमदवन के उन्मादित वातावरण में प्रमत्त हुआ सा अनिरुद्ध, प्राकृतिक उपकरणों से तादात्म्य स्थापित करता हुआ कभी आम्रमञ्जरी को उषा का अवतंस बनाना चाहता है (12) तो कभी लता से आसक्त वृक्ष को देखकर स्वयं आलिङ्गन की इच्छा में खो जाता है (13-15) तो कहीं प्रिया के मदन-मङ्गल हेमकुम्भ के सामने मानो लज्जा से अवनत हुए दाड़िम के पक्व फलों के नीचे खड़ा हो जाता है (16)।

नव-पल्लवरूप हस्तवाली, वायुवेग से इतस्ततः डोलती हुयी और पुष्प-गुच्छ को उन्मुक्त करती हुई लता नृत्योद्यत वनिता की तरह प्रतीत हो रही है। वास्तव में श्लिष्ट उपमा का यह बहुत ही सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है—

दक्षानिलभ्रमणमण्डलितालिवेण्यो
वेल्लत्सलीलनवपल्लवशस्तहस्ताः।
गुच्छस्तनोन्मथनविश्लथपुष्पमुक्ता
नृत्योद्यता इव लता वनिता विभान्ति ॥ 6/20

लताओं पर दृश्यमान भ्रमरों का वितान और विपञ्चिका के पञ्चम स्वर का अनुसरण करने वाला उनका गुञ्जन (22-23), सूर्य की तपन और प्रेयसी के आतप-क्लान्त (26) होने व उसकी मन्थरगति होने की अस्वाभाविक प्रतीति (25) प्रमुखतः अनिरुद्ध के तादात्म्य को ही प्रकट करती है। उसका प्रलाप यहाँ तक बढ़ता है-"हे तन्वङ्गि ! श्रान्त हुई तुम मेरा अवलम्ब क्यों नहीं लेती ?"

श्रान्तासि सुन्दरि ! न मामवलम्बसे किम् ।। 6/27

कभी मलयानिल से प्रिया के नेत्र में गिरने वाले पराग-कणों को अपने मुख-मारुत से वह हटाना चाहता है (29) तो कभी वृक्षों की रम्य छाया में खेद-हरण के लिए विश्राम करने का इच्छुक है (31)। स्नेह से द्रवीकृत हृदय की

तरह तड़ाग (34) और देखने वाले के चित्त का सद्यःहरण करने वाले सरोवर (35) का रूपकात्मक वर्णन बहुत ही सजीव है।

अपनी प्रेयसी को किञ्चित् दूर से देखकर यह काम का जयदैवत और सर्वस्व मनोरथ रूपी बाला है या पद्मवन से निकलने वाली पद्मालया है या राजहंस की तरह गति वाली जल देवता या सद्यःस्नात सरस्वती की तरह शोभायमान सुषमा की मन ही मन परिकल्पना करता हुआ जब उसे प्रत्यक्ष सामने देखता है, तब यह स्वप्न है या जागृति या इन्द्रजाल है; कुछ भी निश्चय कर पाना उसके लिए कठिन है। यहाँ पर भवभूति के "विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा........" की तरह सहज ही अनुभूति द्रष्टव्य है—

स्वप्नोऽयं न स जागरे सति भवेच्चित्ते स्थितं नेक्षते
चित्रं न श्वसितेन्द्रजालमपि न स्पर्शक्षमं जायते।
आज्ञातं चिरतापिनाकृतकृपेणात्मीयशक्तिः स्वयं
नीता लोचनगोचरत्वमधुना कामेन सा प्रेयसी ।। 6/45

सप्तम सर्ग में उषा के नख-शिख सौन्दर्य का सरस वर्णन है, कृष्ण केशपाश से पद कमल तक दृष्टि आते-आते अनिरुद्ध के धैर्य का नष्ट-पिष्ट होना (2) एक प्रकार से काम-विह्वलता ही तो है। स्मर-वैजयन्ती की तरह प्रतिभासित होने वाली वेणी (7), पदाग्रनम्रा दृष्टि (8) और कुन्तल सीमा में सिन्दूर की आभा (9) से दीप्त-मुख की तुलना तो केवल हिमांशु या हेमाम्बुज से ही हो सकती है (10)। काम-चाप की तरह भृकुटियों की वक्रता (11) और मुखचन्द्र के (12) निर्माण में मानों विश्वकर्मा की समस्त सामग्री ही समाप्त प्राय हो जाती है। मुखेन्दु (15) और उस पर शोभायमान हरिणी-दृश की तरह उसके खञ्जन नेत्रों (16) को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे मानो काम के शृङ्गार रस के एकमात्र सार हैं (17)। इसी कल्पना को कवि ने रस में शृङ्गार, शृङ्गार में स्त्री, स्त्री के मुख में नेत्रपद्म और नेत्रपद्मों के भावों में कटाक्षों की उत्तरोत्तर सरसता को प्रतिपादित करते हुए और पुष्ट किया है (19)। कर्ण-कूप को सुधा-रस से सम्पृक्त करने वाली वाणी (20), बिम्बाधर की (23), शुक्ति में परिभासित रदालि (24), मानो प्रिय को रोकते हुए कठिन स्तनद्वय (25) नव प्रवालवत् नख (29) और वक्रता को प्राप्त होने वाले कुचद्वय ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे कांति-रूप सरित्प्रवाह में यौवनेभ के द्वारा शिरसा धारण किए हुए कुम्भ हैं (30)। नायिका के पीनस्तन और प्रौढ़ नितम्ब के मध्य वह खो जाता है—

पीनस्तनप्रौढनितम्बमध्ये
मध्येन हा ! हारितमात्मनः स्वम्। 7-34

प्रिया के शरीर पर जहाँ-जहाँ दृष्टि चली जाती है वहाँ-वहाँ से उसका प्रत्यावर्त्तन ही नहीं होता है—

पतति सहसा यस्मिन्नङ्गे दृगौणदृशो मम
क्वचिदपि ततः प्रत्यायातुं न हि प्रभवेत्पुनः । 7-41

और इसीलिए कविहृदय ने सहजभाव में ही कह दिया कि इस शरीर पर भूषणों से कौन अधिक शोभा की वृद्धि होनी है—

किमुत सुतनौ शोभाधिक्यं करिष्यति भूषणम् ।। 7/43

चित्र-दर्शन में तत्पर उषा के सम्मुख प्रकट होकर वह प्रार्थना करता है (49)—"प्रणय तो साधारण में भी सहज हो जाता है, हे कल्याणि ! तुम मेरा जीवन हो"—"कल्याणि ! जीवितमिदं भवती मदीयं" जो अनायास ही भवभूति के—"त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं" का स्मरण कराता है। उषा कामाकुल होते हुए भी स्वभावज लज्जा से अवनत है (53), निर्निमेष नेत्रों से प्रिय को देखती है (54)। उषा की सखियाँ इतस्ततः निकल जाती हैं, तब लता के नीचे खड़े नायक को देखकर वह कुछ स्फुट और कुछ अस्फुट वाणी से अभिव्यक्ति के लिए उद्यत होती है। यहाँ पर कालिदास का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है—

श्रुतिषु महितं गंभीरार्थं गुरुप्रणयोज्ज्वला ।
कलयति गिरां सम्पन्नौ वा यतः प्रतिभापरा ।। (7/60)

संध्या से सङ्गम की अभिलाषा करते हुए अस्ताचलगामी सूर्य के वर्णन से नायक-नायिका के संयोग को ध्वनित करते हुए (1) अष्टम सर्ग का प्रारंभ किया गया है। चक्र-मिथुन के दुष्कर तप (5) के स्मरण से, कमलों की संकोच वेला में (6), चंद्रमा का आलिङ्गन करती हुयी (13) रात्रि में उषा का स्मरज्वर (22-23) से पीडित होना स्वाभाविक ही है (24-26)। तत्पश्चात् (28-33) पुनश्च रात्रि-वर्णन में कवि की प्रवृत्ति हुयी है।

ध्यानलीन अनिरुद्ध व काम-पीड़ित उषा की वाणी व अर्थ की तरह चित्रलेखा द्वारा नियोजन (34-36) सहज रघुवश के "वागर्थाविव सम्पृक्तौ...." का स्मरण कराता है। नायक-नायिका के परस्पर दर्शन, रससिक्त वार्त्तालाप (40-47) और उषा का अनिरुद्ध की सेवा के लिए महेश्वर के लिए पार्वती की तरह प्रस्तुत होना, आदर्श दम्पति-जीवन के दृष्टिकोण का परिचायक है (48)। दम्पति के वार्त्तालाप और "रहसि रहसि" वर्णन (48-63) करते हुए कभी जीव-देह को भिन्न प्रतीति होते हुए भो दम्पति को अभिन्नता का अनुभव है (51), कहीं प्रेम-कलाप (63) तो कहीं प्रेमत्रपा के अम्बुधि में (65) निमज्जन की उत्कण्ठा। संयोग शृङ्गार के प्रासादिक वर्णन में रत्यानन्द के बार-बार आस्वादन (65) से "विगलितवेद्यान्तर" की स्थिति (65-70) की अनुभूति के साथ ही निरवधि और निस्सीम समय का कवि के द्वारा पूर्व में दिए हुए "क्षणोऽपि यूनां युगवत् चकास्ति" का पुनश्च स्मरण कराता है।

रति-प्रसङ्ग में चेतनैक्य की कवि की दृष्टि में होने वाली शुद्ध भारतीयत्व की प्रतीति अवश्य ही उदाहरणीय है—

> आश्लेषे दयित: सतन्मयतया नात्मानमामन्यत
> प्रेयस्यप्यहमेव वा रतिरिति स्वल्पं न साबुध्यत ।
> मन्ये किं तु रतिस्मरौ निरुपमप्रेमाब्धिलब्धं रसं
> स्वादं स्वादमविन्दतां निजजनैरानन्दरूपं फलम् ।। 8/65

कायिक और मानसिक ऐक्य के बाद दम्पती की एकान्तप्रियता और हास-प्रहास के वर्णन से नवम सर्ग सम्पृक्त है । दम्पती का परस्परावलोकन-कौतुक (1), रतिचिह्नों से बारंबार क्रिया-कलाप का स्मरण (4), नेत्रपान (2-4) से कल्प्यमाण परिरम्भण (6) से पुष्पावचयन में संलग्न दम्पती की पुनरासक्ति (21) से उद्भूत, झूला झूलती हुई उषा के पुनरालिङ्गन को चित्रित किया है । हंस के जोड़े द्वारा किये गये चुम्बन में जहाँ आत्मप्रवृत्ति की ध्वनि है (35-36), तो कहीं रुष्ट भ्रमर द्वारा अधरदंशन का भय (37) और कहीं जलक्रीड़ा का सुन्दरचित्रण (38-40) है ।

प्रिया के स्पर्श की लोलुपता पुन: पुन: सम्मार्जनमें नायक को प्रवृत्त (43) करती है । वे कहीं वीणावादन के श्रुतिरागतान में डूबे हुए हैं तो कभी द्यूतक्रीड़ा में रममाण हो जाते हैं । चंद्रशाला में शयनोन्मुख नायिका की वेणी का और कभी स्तनगोलक का स्पर्श उसे पुलकित करता है तो कभी अधरपान का अमृत (55-57) ।

क्या वसन्त और शीत या क्या वर्षा या ग्रीष्म, प्रिया का संग किसे पुलकित नहीं करता ? यह तन्मयता किसी भी सीमा-चाहे समय या स्थान की-से परे है । स्वेच्छापूर्ण कामतन्त्र में स्वतन्त्र दम्पती के लिए सारे ऋतु और सारी रात्रियाँ ही एक क्षण की तरह व्यतीत हो जाती हैं (63) ।

उषा व अनिरुद्ध के प्रणय से क्रुद्ध बाण के विरोध को नवम सर्गमें निबद्ध किया गया है । बाण के कुपित होने पर अनिरुद्ध उषा को धैर्य दिलाता है (3) और बड़े दर्प के साथ कहता है कि-सिंहशावक तो पौरुष का ही प्रदर्शन करेगा (4) । बाण व अनिरुद्ध का बाण-वर्षा से, अस्त्रों से और पाश से हो रहे भयंकर युद्ध में (6-15) पाञ्चजन्य की ध्वनि श्रीकृष्ण के अवतरण की सूचना देती है (16-17) । दुन्दुभियों की घनघोर गम्भीर ध्वनि (19) और पदातियों के पैरों से उड़नेवाली धूलिसे आकाश व्याप्त हो जाता है (19-21) । बाण श्रीकृष्ण से भी युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है (25), लेकिन उसकी सेना ही विचेष्ट हो जाती है । तलवार से सिर काटने के लिए तैयार वीर का ही शिरच्छेद होकर छिन्न-कण्ठोत्तराल पर हाथी का पैर रखकर खड़ा होना, (30) भयानक रस का परि-

पोषक है वहाँ योगिनियों के द्वारा हस्तताल और अट्टहास उसे (31-32) अधिक पुष्ट करता है। युद्धवीर को अपनाने के लिए अप्सराएँ लालायित हैं, (34) तो कहीं वे उसे चामरों से हवा करती हैं (41)।

युद्ध में चिरनिद्रा में लीन पति को देखकर पत्नी का विलाप देखिये-'नाथ! मुझे छोड़कर अकेले ही अतिरक्त धरणी का आलिङ्गन कर रहे हो। और तो और, तुम अप्सराओं के इतने अधीन हुए हो कि मेरी बात का जवाब भी नहीं दे रहे हो—

अप्सरसां वशगो विलपन्त्यै

न प्रतिवाचमपीह ददासि ।। 9/52

श्रीकृष्ण के द्वारा पराजित होने पर बाण द्वारा भगवान महादेव का स्मरण (1-5) और उनका अपने गणों के साथ युद्धभूमि में अवतरण दशम सर्ग के प्रारंभ में वर्णन का विषय है। देव व दैत्यों के मध्य बाण मानों सात्विक और तामसिक मध्य राजस को अभिव्यक्त करता है (7)। यादवों व शिवगण के विस्तृत युद्ध का वर्णन (8-29) यद्यपि 'अङ्गस्याप्यति-विस्तृति' है फिर भी वह अंगी के परिपाक के निबन्धन की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

जब स्वयं भगवान शिव भी हतप्रभ हो जाते (29) हैं तब वे पुत्रीकृत बाण के प्राणों की रक्षा के लिये अनुनय-विनय करते हैं (36)। वे कहीं युद्ध की निन्दा करते है (40-44) तो कहीं दार्शनिक चर्चा में प्रवृत्त होते हैं। बाण द्वारा शिव के अनुगमन (46) के पश्चात् श्रीकृष्ण के बाणमंदिर में प्रवेश (47) के समय रिपु-स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उनका सौहार्द स्वाभाविक ही है। चित्रलेखा को साथ लिये उषा व अनिरुद्ध का नारद के द्वारा अभिनन्दन (55-56), प्रद्युम्न व साम्ब का दम्पती को आशीर्वाद (57) प्रदान के साथ ही वस्तुत: कथा समाप्त हो जाती है। उसे श्रीकृष्ण द्वारा सपरिवार रैवतक पर्वत पर किये गये विश्राम व दम्पती के स्वागत के लिये तत्पर द्वारकापुरी में उनके आगमन के वर्णन से बारहवें सर्ग का विस्तार किया गया है।

स्वागत के लिए तोरण की शोभा को (10) मङ्गल दुन्दुभि की ध्वनि (16) वृद्धिगत करती हैं। इधर पुरनारियों के आयताक्ष दम्पती को देखने के लिए चञ्चल हो रहे हैं (20) तो मंदिर में प्रवेश के समय अनिरुद्ध की गति मन्थर हो जाती है (29)। नारद के द्वारा दम्पति का मङ्गलाभिषेक (39) और आरती जहाँ वधू के स्वागत की सुरक्षित भारतीय परम्परा को अभिव्यक्त करती है, वहाँ–

"अपि तत्र सुसन्ततिः स्नुषा कुलशीलस्थितिधर्मभाजनम् ।।

भारतीय स्त्री के गौरव व आदर की सनातन परम्परा को दृढतर बनाता है।

(6)

सर्गानुबन्ध में नियोजित उषा-अनिरुद्ध के पौराणिक इतिवृत्त के नायक अनिरुद्ध की उदात्त चरित्रता, रैवतक-उज्जयन्त-सुमेरु आदि पर्वतों, शोणितपुर के प्रमदवन और उसमें दम्पती के विहार के वर्णन तथा उषा की प्राप्ति के पश्चात् युद्ध वर्णन की परम्परा में जहाँ महाकवि ने परम्परा और महाकाव्य के लक्षण का साङ्गोपाङ्ग अनुसरण किया है, वहाँ कवि को स्वच्छन्दता कहें या क्रान्त-दर्शित्व, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन की परम्परा को महाकवि स्वीकार नहीं कर पाये हैं। यहाँ तक कि एक सर्ग में ही कई बार विभिन्न छन्दों का प्रयोग उनके क्रान्त-दर्शन का ही परिचायक है। 12 सर्गों के प्रस्तुत महाकाव्य में उन्होंने 23 छन्दों का प्रयोग किया है और यदि इस दृष्टि से विभिन्न स्थलों पर प्रयुक्त छन्दों को क्रमशः दर्शाया जाय तो औचित्यपूर्ण ही रहेगा:—

क्रम	छन्दनाम	सर्गसंख्या	श्लोकसंख्या
1.	अनुष्टुप्	11	1-60
		12	50
2.	आभाषिणी	4	40
3	आर्या	7	61
4.	इन्द्रवज्रा	1	6,9,11,31,39;
		2	1,13,15,20,25, 30,40;
		7	7,11,15,16,19, 21,22,25,26,31, 34,39;
		9	1,16,17,18,20,21,24, 27,28.30-32,36, 40,44,54,56,59,60;
		10	35,37-40,41,44, 46,48;
5.	उपजाति	1	1,3-5,8,10,12, 14-16,18-20,22-26, 28-29,33-34,36,37,40;
		2	2-4,6-9,11-12,14,16, 18-19,21,23,27-29, 32-36,38-39,43-44, 48-49;

	उपजाति	7	1,3,8,12,14,17,20 23,24,27,28,32,33, 35,36,38,40;
		9	3-5,8,10,11,12,13-15, 19,22,25,26,29,37, 38,39,41,42,45-47, 49,51-52,55,57, 58,61-62;
		10	34,36,42,47;
6.	उपेन्द्रवज्रा	1	2,7,13,17,21,27,30, 32,35,38,41;
		2	5,10,17,22,24,26, 31,37,41,42,45-47,
		3	47;
		7	2,4-6,9,10,13,18, 29-30,37;
		9	2,6-7,9,23,33-35, 43,48,50,53;
		10	43,45;
7.	दोधक	10	49-53;
8.	द्रुतविलम्बित	4	1-39
		5	1-31,39-42;
9.	नाराच	10	54;
10.	पुष्पिताग्रा	7	55,58;
		10	1-18;
11.	प्रहर्षिणी	5	32-38,43;
12.	मञ्जुभाषिणी	3	46,48,50;
13.	मन्दाक्रान्ता	6	46;
		8	73;
		10	30;
14.	मालिनी	2	50;
		3	37-38,49;
		5	44-47;
		8	68,70,74-75,77;
		9	63;

		11	61-62
		12	46
15	वंशस्थ	3	1-36
16	वसन्ततिलका	3	39-42; 44
		6	1-44
		7	48-54; 59
17	वियोगिनी	12	1-45
18	शार्दूलविक्रीडित	1	43
		2	51
		3	43, 45, 51
		4	41
		5	48
		6	44 47
		7	56, 62
		8	64-65 69 79
		9	64
		10	55
		11	63
		12	47-49
19	शालिनी	10	19-29, 31-33
20	शिखारणी	7	45
21	स्रग्धरा	1	42
		7	46
		8	66-67, 76, 78
22	स्वागता	8	1-63
23	हरिणी	7	41-44, 47, 57, 60
		8	71-72

सरस भाषा प्रवाह में शब्दों की न्यूनता में अर्थाधिक्य की प्रतीति और सरल शब्दों के आश्रय से ध्वन्यर्थ की युगपत् प्रतीति ही वैदर्भी का उपादान है और निरन्तर रसबन्धन की वैदर्भी-आश्रित परम्परा में धनदेश्वर के कालिदास से ऋणानुबन्धत्व की अनुभूति सम्पूर्ण महाकाव्य में द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिये –

अहर्निशं यत्र विलासभाजां
क्षणायते प्रेमवशान्निशाहः।
अपि प्रसङ्गागतविप्रयोगे
क्षणोऽपि यूनां युगवच्चकास्ति ॥ 1/32 ॥

स्थूल की सूक्ष्म से दी जाने वाली उपमा में कवि-कौशल्य स्पष्ट है। सनातन धर्म की क्षमा या नीतिमान् की संपत्ति अथवा विशुद्ध ज्ञान के साथ मुक्ति के साहचर्य की तरह श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के साहचर्य (2/3) में कविकल्पना के भव्यत्व के ही दर्शन होते हैं। चित्रलेखा द्वारा उषा व अनिरुद्ध का वागर्थ की

तरह नियोजन जहाँ कालिदास के प्रभाव के संकेत को दर्शाता है वहाँ 6ठे सर्ग में प्रमदवन के वर्णन में प्राकृतिक उपकरणों से तादात्म्य स्थापित करते हुए उन्मत्त-सी अवस्था में अनिरुद्ध का चित्रण कालिदास के 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणा ·· ···' की ही अधिक सशक्त अभिव्यक्ति है ।

नायिका के मुख वर्णन में "ब्रूमो विनिश्चित्य विना प्रपञ्चं, मनोहरं किञ्चन नान्यदस्मात्" अथवा 'इस तन्वी के वदनाङ्गसर्ग में' विश्वकर्ता की सामग्री की समाप्ति का संकेत वास्तव में वैदर्भी की समस्त विशेषताओं को प्रखररूप से प्रकट करता है। कालिदास के साथ ही कवि भारवि और माघ के प्रभाव से भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पाये हैं। महान् व्यक्ति आगत की अवधारणा नहीं करता (4/4), समय ही गुणागुण का कारण है (4/27) अथवा विषयरसविभिन्न कौनसा साहस नहीं कर सकते (5/44) से 'कामातुराणां न भयं·······" सी होने वाली अर्थगुरुता निश्चय ही भारवि के अर्थगौरव का स्मरण कराती है ।

चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध की लक्ष्यप्राप्ति में निस्संशयता का प्रतिपादन करते हुए जब यह कहा जाता है—

सिद्धीनां सुकृतबलेन भाविनीनां
जायन्ते प्रथमत एव साधनानि ।

तो वह कालिदास के 'प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि' का शब्दभेद से पुनरुक्तिमय अर्थगाम्भीर्य ही तो है ।

जहाँ आठवें सर्ग में महाकवि ने एकाक्षरी श्लोक निर्माण में अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन में महाकवि माघ का अक्षरशः अनुगमन किया है वहीं पर उनकी प्रगल्भ विदग्धता के दर्शन वहाँ होते हैं जहाँ कवि को एक ही श्लोक के 2,3 या पाँच तक अर्थ भी अभिप्रेत हैं ।

यादवों और बाणवीरों के युद्ध-प्रसङ्ग में द्युलोक को व्याप्त करने वाले दुन्दुभिनाद और घोड़ों की टापोंसे उड़ने वाली धूलि से व्याप्त दिगन्तर में मानों ऐसा लग रहा है कि अन्य पार्थिवी सृष्टि का ही सर्जन हो रहा है—

पत्त्यश्वेभस्पन्दनोद्भूतधूली —
पूरे मग्ने शेषभूतप्रचारे ।
स्फारे विश्वव्यापिघोरान्धकारे
जाता चित्रं पार्थिवी सृष्टिरेका ।। 10/21 ।।

वीरों के द्वन्द्वयुद्धमें विजयश्री का उत्साह और मृत्यु से आलिङ्गन करने की तत्परता देखिये —

मुण्डं यन्तुः प्रकटमसिना खण्डखण्डं विधातुं
खड्गप्रेण स्फुरितमहसा बाहुदण्डोद्यतेन ।
धावन्वीरः प्रतिभटहठच्छिन्नकण्ठोत्तराले
भूमावेकं न्यधितचरणं दन्तिदन्तोऽद्वितीयम् ।। 10/30 ।।

वीररस के प्रसङ्ग में बीभत्स रस का निबन्धन भी द्रष्टव्य है। तलवारों से टूटकर गिरते हुए मुण्ड देखकर योगिनियाँ ताली बजाती हुई घोर अट्टहास कर क्रीडा कर रहीं हैं:—

मुण्डं मुण्डं खण्डितं वीरखड्गैः
खण्डं खण्डं खण्डयत्याधिनृत्तम्।
योगिन्यो ताऽन्योन्यहस्तात्तताले:
क्रीडं क्रीडं चक्रुरट्टाट्टहासम्॥ 10/31॥

ऐसे भीषण संग्राम में जहाँ पृथ्वी वीरों के मस्तिष्कों से पङ्किल हो रही है, युद्ध में मृत वीरों की पत्नियों के करुण विलाप में भी कवि की रससिद्धता उदाहरणीय है। कहीं अकेले-अकेले पति के द्वारा पृथ्वी का आलिङ्गन तो कहीं उनके अप्सराओं के अधीन हो जाने के लिये उलाहना। पतिपरायणा सती वैधव्य में क्षणभर भी जीवित रहना नहीं चाहती, वह स्वर्ग में भी पति के अनुगमन के लिये अधीर हो उठती है—

यावदियं समुपैम्यहमाशु
त्वां दिवि कान्त ! वरीतुमुपेता।
तावदलं चटुला सुरवामा—
स्तोषय तोषकरात्मवचोभिः॥ 10/53॥

इस प्रकार यद्यपि वीर अथवा करुण का निबन्धन कवि की रससिद्धता का परिचायक है तथापि समस्त महाकाव्य के अङ्गीरस के रूप में शृङ्गार का ही प्रथन हुआ है। इतना ही नहीं, कवि ने शृङ्गार को ही रसराज माना है—

शृङ्गार एवास्ति रसेषु सारः॥ 7/19॥

शृङ्गार के आलम्बन और उद्दीपन दोनों का ही बहुत सुन्दर चित्रण काव्य में हुआ है तो कहीं पर संकेत से ही सयोगादि की रमणीय प्रतीति हुई है। सूर्यास्त के समय सूर्य के फैलाये हुए किरणकरों से सन्ध्या के आलिङ्गन की अभिलाषा उषा व अनिरुद्ध के संयोग का युगपत् संकेत देती हैं। स्वच्छ चन्द्र-प्रकाश की रात्रि जहाँ प्रेम में और दिन का समय उपवन विनोद में ही व्यतीत होता है, जहाँ प्रसूनसम्पत्ति-सेवी सुभग समीर मन को चञ्चल बनाता है, वहाँ स्मर का उपकार ही तो होगा—

प्रेमैकनेया रजनी सचन्द्रा
रम्यं दिनं चोपवने विनोदैः।
स्मरोपकारी सरसप्रसून -
सम्पत्तिसेवी सुभगः समीरः॥2/40॥

स्वप्नसन्दर्शन के बाद अनिरुद्ध का पूर्वराग और आशाप्राप्ति की प्रतीक्षा में उसका क्षीणकायत्व दर्शनीय है—

ननु दुर्लभा वरतनुस्तनुं पुनः
पुनरेष पञ्चविशिखः क्षिणोति मे ।
क्षणमक्षि दक्षिणमपि स्फुरत्यहो
सह बाहुनेति हृदयं प्रसीदति ।। 3/46 ।।

कम्पायमान हाथ में पकड़ी हुई तूलिका से चित्र बनाने में असमर्थ उषा चित्रलेखा से अनिरुद्ध का चित्र बनवाना चाहती है तो अनिरुद्ध के सम्मुख उपस्थित हो जाने पर स्वयं कामाकुल अवस्था में होते हुए स्वभावज लज्जा से अधोमुखी स्तब्ध हो जाती है (7/52), आनन्दाश्रुवर्षण से केवल अपने वक्ष को भिगोती है—

कान्तकान्तमुखवीक्षणक्षणे
हर्षबाष्पसलिलं ववर्ष यत् ।
सिंचति स्म सुतनोर्कुचद्वयं
प्रेमकन्दमिव बाहुकन्दलीम् ।। 2/39 ।।

महाकवि का संयोग की प्रतीति कराने का ढंग विशिष्ट है। वह शरीरमात्र का नहीं, आत्मसंयोग है ! बल्कि वह किस प्रकार की अनुभूति है, उसे समझना ही बहुत कठिन है—

भिद्यद्गङ्गातरङ्गा समजनि यमुनैका सहस्रप्रवाहा
वीणा निक्वाणहीना चलशफरयुगं शैवलान्तर्निलीनम् ।
पद्मामोदो मृदाया कनकसरसिजं भूरि हीरानुषक्तं
शम्पाकम्पान्निवृत्तः समजनि किमतस्तद्वयं न प्रतीमः ।। 8/67

यही 'विगलितवेद्यान्तर' की स्थिति है जिसमें किसी अन्य तत्त्व की प्रतीति नहीं होती । जैसा महाकवि ने कहा भी है (2/18) कि प्रेम तो वास्तवमें अमूर्त ही है, वह शरीरभेदसे मूर्त प्रतीत होता है । जड में चैतन्य के अथवा मूर्त में अमूर्तदर्शन की चिरन्तन भारतीय प्रवृत्ति के दर्शन एतद्देशीय साहित्य की विशेषता है या दूसरे शब्दों में वह हमारे साहित्य की स्वतन्त्र पहचान है । महाकवि धनदेश्वर के कामाभिनन्दन का प्रणयन इसी निकष पर हुआ, उसके अध्ययन और रसास्वादन का भी यही निकष होना चाहिये ।

द. बा. क्षीरसागर
ओमप्रकाश शर्मा

महाकविधनदेश्वरप्रणीतं

कामाभिनन्दनमहाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

॥ श्रीगणपतये नमः ॥

श्रेयस्करं शाश्वतमस्तु वस्तु
गुणत्रयोपेतममेयरुपम् ।
अजीजनद्यज्जगदेकबीजं
सदङ्कुरान्ब्रह्महरीश्वरादीन् ॥१॥

जयन्ति तत्तद् गुणपञ्चबाणा[1]
बाणासुरापत्यमहे महान्ति
हरीश्वराभ्यां चरितानि तानि
कृतानि कामं क्षतपातकानि ॥२॥

अहो महोत्साहिबुधैर्विधेयं
विधिं चरन् मुह्यति हन्त ! मन्दः ।
हंसोचितं हंसशिशुस्ववृत्त्या[2]
क्लिष्णात्यनन्ताकलनं विधित्सु ॥३॥[3]

अथार्थवान् राजपथेन यात—
स्तेनेतरोप्यर्हति किन्न गन्तुम् ।[4]
तद्वर्णितायां मुरजित्कथायां
बुधैर्ममास्यामुचितः प्रयासः ॥४॥

1-ब. पञ्चबाण;
2-ग्र. स्वकृत्या
3.-ब. पञ्चार्थोऽयं श्लोकः
4-ग्र. किन्न गत्या

निन्दन्ति मंदाः स्वत एव वस्तु
स्तुवन्ति सन्तस्तदहो न चिन्ता ।
यतः पवित्रे मुरजिच्चरित्रे
श्रमो ममायं चरितार्थ एव ॥५॥

ख्याताः पुराणेषु कथास्तथापि
युक्त्या कवीनां सरसा भवन्ति ।
नेत्राणि चित्राण्यपि सुन्दरीणां
सौभाग्यभाञ्ज्यञ्जनसंजनेन ॥६॥

यशांसि भूयांसि गुणास्त्वगण्याः
कथास्तथा चारुपवित्रचित्राः ।
एकैकमप्यान्तरभक्तिभाजां
तापत्रयान्तापहरेर्दयालो ॥७॥

स वासुदेवोऽवततार देवः
कुले यदूनां किल विश्वरूपः ।
यस्त्रातुमेतन्निजलीलयैव
न किं चमत्कारकरं चकार ॥८॥

दिव्यं वपुर्दोर्भिरुदायुधश्रि
श्रीवत्सचिह्नं जयिकौस्तुभेन ।
यो जातमात्रः परिदर्श्य पित्रो—
र्नेत्रोत्सवं विश्वगुरुश्चकार ॥९॥

अशेषवन्द्यः किल शेषशायी
शिलाविशाले हृदि पूतनायाः ।
प्राणैः समं शैशवलीलया यः—
स्तनन्धयन्मुग्धतया लुलोठ ॥१०॥

यो ब्रह्मणा हन्त ! हृतान्विदित्वा
सवत्सपान् वत्सगणान् ससर्ज ।
संस्तूय दत्तैश्च चतुर्मुखेन
[1]तैस्तान्दयालुर्द्विगुणीचकार ॥११॥

कदम्बमारुह्य कलिन्दकन्या
तीरे निमज्यांबुनि कन्दुकार्थम् ।
यः कालियं नागमपाचकार
लोकानशेषान्प्रविधातुमीशः ॥१२॥

कनिष्ठया गोकुलगोपनार्यै—
कनिष्ठया गोपवधूभिरीक्ष्यः ।
समुच्चकैर्यो गिरिमुद्दधार
समुच्चकैस्तत्र न संस्तुतोऽभूत् ॥१३॥

[2]भूतिप्रभूतीकृतमूर्तिरेकै—
कां[3] यः प्रति प्रेमरसं भजन्सन् ।
वृन्दावने शारदचंद्रिकायां
चक्रेऽङ्गनाभिः[4] सह रासकेलीः ॥१४॥

रामाः सकामा यमिनं यमन्न[5]—
मुक्त्वा नयन्त्यः स्वपतीनतीत्य ।
गृहे निरुद्धासु परा सुरासु
यज्ञेषु [6]यज्ञेऽपि तदात्मिकैका ॥१५॥

1-अ. तैस्ता दयालु
2-अ. प्रभूतिकृत
3-अ. रेकैकम्
4-ब. चक्रे गणाभिः
5-ब. यमत्रम्
6-ब. सुज्ञे

कंसं नृशंसं पशुमाशु हत्वा
युद्धाध्वरे तेजसि यः स्वकीये ।
[1]जुहाव तुष्ट्यै मखभागभाजां
कृत्वोग्रसेनं जययूपरूपम् ।।१६।।

पचेलिमश्रीफलकान्तिमन्ति
सुरारिनारीस्तनमण्डलानि ।
चक्रेण चक्रे चलकाकपक्षः
समुक्तमुक्ताफलनिष्फलानि ।।१७।।

[2]कंसारिरंसाकुलकेशपाशः
स्ववैरिनामा नयनांबुवर्षैः ।
अहर्निशं देव हृदि ज्वलन्तम्
यो दुःखदावं शमयाञ्चकार ।।१८।।

स्वपाणिपद्मग्रहयोग्यमङ्गं[4]
सुदर्शनं भीमनरेन्द्रपुत्र्याः ।
[5]वाञ्छन्तमस्यै शिशुपालमीशः
सुदर्शनेनाकृतदर्शचन्द्रम् ।।१९।।

युद्धं दिदृक्षुः कुरुपाण्डवानां
किरीटिने दर्शितविश्वरूपः ।
युधिष्ठिरप्रीतिपरायणो यः
क्षमाभरं दुर्भरमुद्दधार ।।२०।।

सुरारिकारागृहमोचिताभिः
सानन्दवृन्दारकसुन्दरीभिः ।
यशः शशिश्रीजयिगीयमानं
सुश्राव स श्रोत्रपथाभिरामम् ।।२१।।

1-अ. जहाव
2-अ. कंसारिसंसा
3-अ. स्ववैरिभावा
4-अ. मदङ्गम्
5-अ. वाञ्छन्तिमुच्चैः

श्रीद्वारका नाम पुरी पुरीणां
गुणैर्धुरीणाजनि राजधानी ।
परं न रत्नाकरजन्मसाम्यात्
काम्या रमेवास्य हरे रुचापि ।।२२।।

रेजे पुरी भस्मितकामजन्म—
हेतुः पुनर्जन्मविनाशशीला ।[1]
सुगोमती भूरिविभूतिशोभा
हरेः प्रिया मूर्तिरिवेश्वरस्य ।।२३।। पञ्चार्थः ।

उदारगोमत्यपरांबुपत्यो—
र्यत्रानिशं सङ्गमङ्गलांशम् ।[2]
डिण्डीरनेपथ्यभृतोस्तरङ्गैः
सम्भाव्यते मन्द्रमृदङ्गनादः ।।२४।।

गौर्गोमती कामदुधा रसौघैः
पतिं गवां प्राथ वृषं सुवाना ।
सतः सतः[3] श्रीयुषि यत्र चित्रम्
वृषाङ्कभावेन हरी करोति ।।२४।।

नृणां सुराणामपि भोगिनां भू—
[4]र्धत्तां सुखं कापि वसुन्धराख्या ।[5]
सा द्वारवत्यामुचिता तु यस्यां
[6]सर्वोऽपि लक्ष्मीपतिरेव पौरः ।।२६।।

1- अ. विनाशि शीला
2- अ. मण्डलाङ्गम्
3- अ. जुषि
4- अ. दत्ताम्
5- ब. वसुन्धराख्याम्
6- ब. सर्वो सलक्ष्मी

प्रसिद्धमेतन्नगरीषु रत्नं
यदादिगर्भे धरणिर्दधार
तदादि मन्ये ऽनुगताभिधेयं
सा रत्नगर्भेति दधेऽभिधानम्[1] ।।२७।।

विश्वस्य चैकस्थसमस्तशोभा
विभाव्यते विश्वकृता कृतास्याम् ।
विश्वात्मनो वासनया कवीना—
मत्युक्तियुक्तेश्च मृषा मृषात्वम् ।।२८।।

संध्याभ्रमोऽभूच्छरदभ्रशुभ्रे
दिवोन्नतस्फाटिकसौधसंघे ।
यत्रान्तरुल्लासिविलासिनीनां
भूषामणीनां प्रतिबिम्बितेन ।।२९।।

यस्यां निशि स्फाटिकनर्म्यहर्म्य—
लक्ष्येष्वलक्ष्येषु रुचा सुधांशोः ।
गवाक्षलक्ष्यैः सुमुखीमुखाब्जै—
र्दधे शरच्चन्द्रकदंबलक्ष्मीः ।।३०।।

निर्माति हर्म्येषु हिरण्मयेषु
सुमेरुशृङ्गेष्विव रोचमानैः ।
या भानुबिंबभ्रममादधानै—
र्दिशां प्रकाशं कुरुविन्दकुंभैः ।।३१।।

अहर्निशं यत्र विलासभाजां
क्षणायते प्रेमवशान्निशाहः ।
अपि प्रसङ्गागतविप्रयोगः
क्षणोऽपि यूनां युगवच्चकास्ति।।३२।।

---

1 2श्लोकोऽयं बग्रन्थे 'संध्याभ्रमो' इत्यस्य पश्चादुपलभ्यते ।

जानामि यस्यां सुमुखीमुखानां
श्रिया जितो लोकविलोकिताङ्कः ।
[1]निषेव्य भानुं सकलोऽपि भूत्वा
संक्षीयतेऽद्यापि शशी सलज्जः ॥३३॥

नितंबिनीनां वदनेन्दुविम्बैः
शङ्के शशाङ्को विजितो धृताङ्कः ।
ह्रिया विशत्येष मुहुः कुहूषु
देदीप्यमानात्मनि चित्रभानौ ॥३४॥

विलासिनीनां वदनारविन्दै—
रस्यां शशाङ्को विजितोस्ति तावत् ।
हरिष्यते मे हरिणोऽपि गानै—
रित्यस्तकूटे न पलायतेऽसौ ॥३५॥

गणैर्मणीनामनणीयसां या
ततैरतन्द्रं विपणौ वणिग्भिः ।
नाम्नैव रत्नाकरतांबुधीनां
सारो मयि व्यक्तमिति व्यनक्ति ॥३६॥

इन्दिन्दिराणां घनसारराशेः
परागगौराङ्गरुचां प्रसङ्गात् ।
कस्तूरिका यद्विपणौ जनानां
कर्पूरपूरभ्रममातनोति ॥३७॥

यदापणेनिर्म्मितमण्डलीके
कर्परपूरे भ्रमरा भ्रमन्तः ।
भृशं दधाना विधुलक्ष्मलक्ष्मी
तच्चन्द्रभावं चरितार्थयन्ति॥३८॥

1-निषेव्यादारभ्य 'धृताङ्क' इत्यन्तः पाठः अग्रन्थे नोपलभ्यते ।

[1]दु.खानुपक्तान्यपि केवलानि
भजन्ति सर्वे कृतिनः सुखानि ।
मूर्ते चिदानन्दमये हि यस्यां
जाग्रत्यहो दुष्कृतजं क्व दुःखम्।।३९।।

बलादुपेन्द्रेण दिवो महेन्द्रं
जित्वा निजान्तःपुरकौतुकार्थम् ।
आरोपितेऽस्यां पुरि पारिजाते
प्रापे न कैः कैः स्वमनोभिलाषः ।।४०।।

दैत्यद्रुहा येन विनीतशोकः
स्वर्लोकलोकः श्रयते निजौकः ।
तेनाऽमुना श्रीपतिनाश्रिता सा
कयोपमेया नगरी नगर्या ।।४१।।

नित्यानन्दं सुवाना जनिरजनि नृणां सर्वदाऽर्थत्रयस्य
क्वानिष्टानां कथा स्यामभवदभवनं लोकतापत्रयस्य
चिन्तातत्त्वस्य वादः श्रुतिविषयभवो गृध्नुता सद्गुणानां
द्वेषो दोषेषु पापे क्षतिरपि जडता केवलं वारिणि स्यात् ।।४५।।

काश्यां कश्यपवंशजोर्जितयशः श्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीघनदेश्वरेण कविना सर्गोऽजनिष्टादिमः ।।४३।।

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये श्रीद्वारवतीवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ।

—0—

1-अ. दुःखान्य शक्तान्यपि

द्वितीयःसर्ग :

तां शासतो द्वारवतीं मुरारेः
राज्ञीषु मुख्याऽजनि रुक्मिणीति ।
वीक्ष्य क्षितिस्थं तमनुव्रताय[1]
लक्ष्मीरियं स्नेहवशावतीर्णा।।१।।

सहस्रसंख्यास्वपि सुन्दरीषु
समानवृत्तेरपि माधवस्य
या प्रेमसीमाजनि रोहिणीव
तारासु ताराधिपतेरतीव।।२।।

यथा यथार्थस्य नयस्य संपत्
क्षमेव धर्मस्य सनातनस्य ।
ज्ञानस्य शुद्धस्य यथैव मुक्ति—
र्हरेस्तथाभूत्सहचारिणी सा।।३।।

यं योगिनो योगवशान्निशम्य
चित्तं चिदानन्दमयं विदन्ति ।
स एव देवो वरर्वाणनीं तां
भजन्नजो धन्यममन्यता स्वम्।।४।।

तामेकरत्नं हृदि कौस्तुभान्य—
दनन्यसाधारणमिन्दिरेशः ।
श्रीवत्समत्रौरसमन्वयायं
संभाव्यभव्यं विभरांबभूव।।५।।

तयोरतिप्रेमरसप्रसक्त्या[2]
रते[3] प्रवृत्तेऽन्तर भेदभाजोः ।
सा रत्नगर्भेव बभार गर्भं
रुक्मिस्वसा भास्वरवंशरत्नम्।।६।।

1-अ. तमनुप्रताप
2-अ. रसंप्रसक्त्या
3-ब प्रवृत्तोन्तर

सा दौहृदोत्थं क्रमशस्त्यजन्ती ।
वैवर्ण्यमङ्गेऽ[1] पचयं भजन्ती ।
शनैरतीते समये धनानां
वलक्षपक्षक्षणदेव रेजे ।।७।।

रत्नप्रसूः पुत्रमसूत काले
शुभे शुभाङ्गेन चिरेण येन ।
हरिः सहर्ताऽऽखिलबन्धनानां
जातःपितृणामृणबन्धमुक्तः ।।८।।

सानन्दमानन्दकरोत्पताके
जगत्पतेर्मङ्गलसूचकं यत् ।
स्वमंदिरे चारु यथा तथासी—
त्तौर्यत्रिकं तद्भुवनत्रयेऽपि ।।९।।

स जातशर्मा कृतजातकर्मा
प्रद्युम्ननामानमनन्तरूपम्[2] ।
चकार तं चक्रधरः सहर्षः
स्मरावतारं स्वधियावबुध्य ।।१०।।

ललास सन्तानतरोः स पित्रो—
र्नवाङ्कुरः प्रेमरसाभिषिक्तः ।
तद्दृक्फलायाधरपल्लवान्तः
[3]प्राकाशि येन स्मितकोरकश्रीः ।।११।।

शीलेन शौर्येण तथाद्भुतेन
रूपेण सिद्धेऽपि समानभावे ।
विशिष्यते स्म स्वपितुः स तस्मात्
पुंसः पुराणान्नवयौवनश्रीः ।।१२।।

1-अ. वैवर्ण्यमङ्गोपचयं
2-अ. नममानरूपम्
3-ब प्राकारि

जन्मान्तराभ्यासवशादशेषा
गुरोरनायासमधीत्य विद्याः ।
रेजे परब्रह्मशरीरजन्मा
नवावतारः किमु शारदायाः ॥१३॥

स्वापेक्षया शंबरमन्दिरस्थां
स्मरावतारो रतिमात्मपत्नीम् ।
स रौक्मिणेयो विधिना प्रपेदे
नैकात्मनोर्जातु भवेद्वियोगः ॥१४॥

सा सुन्दरी सुन्दरवस्तुसीम्ना—
पत्या निहत्या हि तमोजसाप्ता ।
रामेण सीतेव सतीचरित्रै—
र्धात्रीपवित्रीकरणं बभूव ॥१५॥

विभूतिभृद् विश्वपतिः स तातः
श्रीरुक्मिणी प्रेमवती प्रसूश्च ।
प्रद्युम्न एष स्वयमस्ति कामो
रतिप्रिया काचन रत्नसंपत् ॥१६॥

गुणानुबन्धे न हि रूपसंप—
न्नरूपसंपद्यपि हा गुणाः स्युः ।
सति द्वये प्रेम न तत्तु दैवाद्—
द्वयोस्तयोरेव समस्तमस्ति ॥१७॥

उमामहेशाविव तावभिन्नौ
दृश्येऽपि नारीनरभावभेदे ।
प्रेमैव तन्मूर्त्तमुपाधिभेदाद्—
द्विधा दरीदृश्यत एवमूहे ॥१८॥

कृत्वा रतिं यो निजकण्ठहारं
त्रैलोक्यलोके मृगयाविहारं
चक्रे स तं चक्रधराङ्गजन्मा
मृगेषु पञ्चेषुरियेषकर्तुम् ॥१९॥

त्रस्तं मृगेद्रान्मृगमुत्पतन्तं
शरव्यमप्याशु विहाय वीरः।
सिंहावलोकेन जघान सिंहं
शौर्यं हि शूरेषु न कातरेषु ॥२०॥

सवेगवाजिभ्रमिभग्नमार्गे
मिथो विशल्येणगणे भयेन।
स्तनं स्वपोतस्य मुखेऽर्पयन्तीं
मृगीमवेक्ष्यापससार वीरः॥२१॥

गणे मृगीणां गलितान्यचेष्टं
दृष्ट्वा मृगं पञ्चशरैर्ममायम्।
विद्धोधुनैवेति न संदधेन्यं
प्रद्युम्ननामा विशिखं विशेषात् ॥२२॥

अयं मृगोऽयं गवयो वराहो
लुलाय इत्याकुलपत्तिजल्पैः।
तत्तत्पदाङ्कावनिकल्पनायां
मनः समुत्साहसुख स लेभे ॥२३॥

अहो वराहोऽतिबली जवीयान्
स्रुती यदि स्यात्किमनेन न स्यात्।
यतो हतोऽप्यस्य शरैः प्रहर्तुं
प्राप्तोऽपि वाजिप्लुतिवंचितोऽ भूत् ॥२४॥

उत्क्षिप्य पुच्छं चपलायताक्ष—
मुद्वाह दण्डं घनघोरघोषम् ।
व्याघ्रं महोग्रं स पतन्तमारा—
च्चित्रोपमं बाणहतं चकार ।।२५।।[1]

स तत्र तत्रार्तवभोगयोग्ये
भूमीविभागे विहरन्यथेच्छम् ।
रतिं रसेनाभिनियोज्य विज्ञो
ययौ गिरिं रैवतकं कदाचित् ।।२६।।

संध्याभ्रवृन्दैः श्रितमध्यभागः
पक्षैरिव स्वैः स्फुटधातुरागैः ।
गिरिर्गरीयान्गरुडोपमेयो
दामोदरेणावसतीकृतो यः ।।२७।।

हरो हिमाद्रौ मदनं ददाह
योगे मधोः सत्यपि रैवते तु ।
भूयोऽवतीर्णः सुखमेधते स्म
स्मरः स रत्याम्बिकया हरोऽपि ।।२८।।

[2]सुमेरुकूटोऽयमिति प्रमाणं
पुराणवाणी यदधिश्रितो यः ।
आमोदवद्भिः सुमनःसमूहैः
सुजातरूपावनिकल्पशालैः ।।२९।।

चंद्रस्य पीयूषरसप्रवाहः
सुवर्णरेखा खलु यत्र शैले ।
यत्तुङ्गशृङ्गाग्रनिघर्षणोत्थ—
व्रणस्य चंद्रेऽस्ति किणः कलङ्कः ।।३०।।

1-'कृत्वारति' (श्लो. सं. 19) मित्यारभ्य 'उत्क्षिप्य पुच्छं' (श्लो. सं. 25) मित्यन्तः पाठः बग्रन्थे नोपलभ्यते ।

2-ग्र. सुमेरुशृङ्गो

निपीय पीयूषमशेषमेष
नागो नगोऽयं किल नागलोकान् ।
पतङ्गतप्तः स्वकमुत्तमाङ्गं
न्यषिञ्चदुच्चैः सरिदास सा किम् ॥३१॥

सिद्धेन केनापि सुवर्णसिद्ध्यै
कृतोऽयमुड्डामरयन्त्रमद्रिः[1] ।
रसः प्रसह्यावहदत्र तत्किं
सुवर्णरेखेति नदी व्यदीव्यत् ॥३२॥

नेयं सरित्स्याद्यदि लेलिहानः
कल्पद्रुमाणामिव पल्लवानि ।
गिरिः करी शृङ्गकरेण भित्त्वा
मंदाकिनीं मौलितलेन दध्यात् ॥३३॥

सिद्धाङ्गनानामिह गह्वरेषु
सुवर्णरेखाभ्रमिमञ्जुलेषु ।
रतिश्रमः पुष्पितकाननेषु
निरस्यते द्रागमलयानिलेन ॥३४॥

तरौ तरौ पुष्पभरोऽत्र शैले
पुष्पेषु मत्तभ्रमरा भ्रमन्ति ।
भृङ्गै रनङ्गः प्रतिबोध्यमानो
मानं हरत्युन्मदमालिनीनाम्[2] ॥३५॥

योगे तयोस्तत्र चिराद्धरायां
मधुर्विधूय क्रममार्तवं स्वम् ।[3]
उदञ्चयामास निजोपचारान्
सतां समृद्धिः सुहृदां मुदे हि ॥३६॥

1-अ. यन्नमद्रि
2.-ब. उन्मदमानिनीनाम्
3-अ. स्वाम्

वसन्तकीर्त्तिः स्फुटमञ्जुगुञ्जा—
रवैर्द्विरेफैः कृततानानादम्[1] ।
घनं वनं मत्तपिकावलीनां
कलानुलापैरिव गायति स्म ।।३७।।

सिद्धौषधी कोकिलकाकलीनां
कर्णद्वयालङ्कृतिरङ्गनानाम् ।
अमोघमस्त्रं कुसुमायुधस्य
मधोः पताकाम्रजमञ्जरीयम् ।।३८।।

[2]धराधुरामांबुजराजिभाञ्जि
सरांसि तेजांसि सुखप्रदानि ।
[3]अग्रेसहो वायुरनन्तमच्छं
शीतात्यये भूतगणो मुदेऽभूत् ।।३९।।

प्रेमैकनेया रजनी सचंद्रा
रम्यं दिनं चोपवने विनोदैः ।
स्मरोपकारी सरसप्रसून—
संपत्तिसेवी सुभगः समीरः ।।४०।।

रतिस्मरौ विस्मृतविप्रयोगौ
जातौ सुखैकाश्रयिणौ यदेतौ ।
समृद्धिभाजामधुना पिकोक्त्या
कृतं सुहृत्कृत्यमकृत्रिमं तत् ।।४१।।

सदा वसन्तेऽपि गिरौ वसन्तः
कामेऽपि कामः समभूत्प्रकामम् ।
रत्यां रतिश्चेति सति त्रयाणां
द्वित्वे द्वयोरैक्यमवाप चेतः ।।४२।।

1-अ. कृततानदानम्
2-अ. धरांबुरागां
3-ब. आयासहा

समुन्नतौ रैवतकोज्जयन्तौ
सुवर्णरेखासविशेषशोभौ ।
स्तनाविवालोक्य रतेः सहारौ
रिरंसुरासीदिह रौक्मिणेयः ॥४३॥

स मञ्जरीमाम्रलतां गृहीत्वा
करेण लीलावलिताङ्गभङ्गम् ।
सा तस्य काञ्चीमणिदृश्यमध्या
जह्रे मनः सिंहविलोकितेन ॥४४॥

रसादशङ्कं करमीरयन्तं
सखीसमक्षं सहसाऽऽयताक्षी ।
सहुङ्कृतिस्मेरमुखी क्रुधेव
कर्णोत्पलेन प्रियमाजघान ॥४५॥

छटा कटाक्षस्य शुचिस्मितानि
सुधानिधानानि च भाषितानि ।
हठाच्च मुक्तान्यवगुण्ठितानि
क्रमान्मृगाक्ष्याः मधुराण्यभूवन् ॥४६॥

पश्येति नो पश्यति वल्लभोक्तौ
प्रियेन पश्येत् पथि[1] पश्यतीयम् ।
विधौ निषेधोऽपि विधिर्निषेधे
रसावहः कोऽपि मृगीदृशोऽभूत् ॥४७॥

सुदर्शनेनास्यगतं स्मितेन
गिरं गिरा स्वान्तमहो जहार ।
संस्पर्शने मोहनवल्लरी सा
चकार किं वा न वयं प्रतीमः ॥४८॥

1-अ. पथ

परस्परस्य प्रतिबिम्बभङ्ग्या
कान्तौ परिष्वङ्गरसप्रसङ्गे ।
ऐक्यं मनोभ्यां न हि केवलं तौ
गतौ वपुर्भ्यामपि कान्तिमद्भ्याम् ॥४९॥

इति समरसयोगे भर्त्तुरानन्दहेतुं
रतिरतितनुमध्या गर्भमुच्चैर्बभार ।
प्रतिपदिव नवेन्दुमौक्तिकं सिन्धुशक्तिः
परमिव सुरसिन्धोः पूरमैशी जटेव ॥५०॥

श्रीमान्राजसमाजपूजितपदः श्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूर्यं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण कविना सर्गो द्वितीयोऽजनि ॥५१॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये रतिगर्भसंभवो नाम द्वितीयो सर्गः ।

—०—

तृतीयः सर्गः

अथ प्रियः पाण्डुमुखीं समीक्ष्य तां
विधूदयात्प्रागिव वासवीं दिशम् ।
सुमन्थरां दक्षिणसक्थिगौरवा—
न्ननंद हंसीमिव मानसौकसम् ।।१।।

पयोधरौ श्याममुखौ समुन्नतौ
रराज सा प्रावृडिवानुबिभ्रती ।
सुमध्यदेशे तत एव पूरिता
न रोमराजी यमुनेव शोभा ।।२।।

उपस्यधिस्वप्नदशं कलानिधिः
पपे मयारुह्य दिगन्तदन्तिनम् ।
इति प्रियास्येन्दुसमुद्भवां वचः
सुधामधासीद्दयितो महोदयाम् ।।३।।

समस्तवस्तूपचिते पितुर्गृहे
सपारिजाते किमु नाम दुर्लभम् ।
तथापि तद्दोहदभावपूरणे
समुत्सुकत्वं न हि तेन तत्यजे ।।४।।

शनैः शनैः सा निजदौहृदां रतिं
विहाय शोभातिशयं समीयुषी ।
क्षपाव्यपाये सुतरां विकस्वरा
सरोजराजीव रराज सुन्दरी ।।५।।

समीक्ष्य सख्यो गुरुगर्भविक्लवा—
मरिष्टमासाद्य निषेदुषीं रतिम् ।
समुत्सुकाय प्रसवोन्मुखीं स्थितां[1]
ससंभ्रमं[2] तत्पतये न्यवेदयत् ।।६ ।

1-ब मुखाति ता
2-ब तत्पदये

सुतं मुहूर्ते शुभशंसिनिग्रहै—
रसूत सा कामवधूर्विधूपमम् ।
तयोरशेषोत्तमरूपसंपदो—
रपत्यमत्यद्भुतमद्भुतं न तत् ॥७॥

स्वयं सदानन्दमयो जगत्प्रभुः
ननन्द जाते सुतनन्दनेऽधिकम् ।
भृशं समुद्वेल्लति शीतदीधितेः
सदोत्तरङ्गोप्युदयेन सागरः ॥८॥

यथेह संगतिमभून्नतभ्रुवां
तथैव नाकेऽप्सरसां समुत्सवात् ।[1]
कटाक्षविक्षेपनिकुञ्चनादिभि—
रीशो विलासैः परमत्यरिच्यत ॥९॥

रराज गर्गेण महौजसा भृशं
स्वयं कुमारः कृतजातसंस्कृतिः ।
शरत्प्ररूढः कमलाकरो यतः
प्रकाशमाप्नोति विवस्वतेक्षितः ॥१०॥

प्रयच्छतो[2] विश्वकृतोऽधिकारिभिः
सुवर्णमुत्कृत्य हृतं यतोऽभितः ।
अधः कृशोऽभूद् भुवमूर्ध्वमायत—
स्ततः सुमेरुर्न पुनर्निसर्गतः ॥११॥

[3]हरिर्महानन्दतया यतस्तदा—
दिदेशमाबद्ध इहास्तु कश्चन ।
इतीव सा द्वारवती विजित्वरी
पुरी जनानामधुनापि मोक्षदा ॥१२॥

1-अ. समुत्सव, ब-समोत्सवात्

2-ब. विश्वभृतो

3-अ. यतस्तद्देहमाबद्ध

स नारदादुत्तरवल्कलं हरन्—
हरिः सुदाम्नोऽपि गले निवेशयन् ।
तयोर्जिघृष्यन्निव पारितोषिक
चकार दुर्वाससमागतस्मितम् ॥१३॥

वहन्तमंकेन करेण वल्कलं
श्लथं विपञ्चीमपरेण नारदम् ।
सकौतुकं स्कन्धतले निधाय तं
हलायुधस्ताण्डवमण्डनं व्यधात् ॥१४॥

शिशुं निजोत्सङ्गतले निधाय तं
निरीक्षणान्नो विरराम रुक्मिणी ।
पुनर्पुनर्निश्चलनेत्रयोश्चिरं
ससर्ज सानन्दभराश्रुवर्षणम्[1] ॥१५॥

पुराकृतोद्दामतपःफलं रतिः
पिता तमात्मानममन्यतापरम् ।
स मूर्तमानन्दमहो पितामहो
विधेर्विधानं जनितापि चाद्भुतम् ॥१६॥

परेण विद्या सुधियापि सुन्दरी
मनः सुरूपेण रणे पराक्रमैः ।
निरोत्स्यते नेति चकार तं मुदा[2]
पतिर्यदूनामनिरुद्धसंज्ञकम् ॥१७॥

अहो सुहृद्भिर्बहुभिर्दिने दिने
निपीयमाना नयनैः पिपासुभिः ।
शरीरशोभा ववृधे: शिशोः शुभा
वलक्षपक्षे रजनीपतेरिव ॥१८॥

1-अ. सुवर्षणम्
2-अ. परैरमुं व्यधात्

शिशुः स रिङ्गन्मणिकुट्टिमाङ्गणे
पुरो विलोक्य प्रतिबिम्बमात्मनः ।
सहालपंस्तेन सुमुग्धया गिरा
ससंभ्रमं कस्य न कौतुकं व्यधात् ।।१९।।

स मातुरुत्सङ्गतलात्पितुर्व्रजन्
पितुस्तथा मातुरयं मुहुर्मुहुः ।
[1]अनारतं प्रेम ततान तावपि
प्रमोदमुच्चैरभिजग्मतुर्नवम् ।।२०।।

तदिन्दुबिम्बं नितरां न मेऽबरा—
दितीरिता साग्रहगर्भकेण सा ।
अदर्शयत्स्फाटिकपात्रबिम्बितं
सुधानिधानं मुमुदेऽमुना च सः ।।२१।।

अयं मम प्राप्तिरये कुतोऽस्य ते
पितुः क्व सोत्रैष पितामहेन सः ।
[2]लपन्निति स्वं पितरं त्रपानतं
चकार गारुत्मतकीरकौमुदी[3] ।।२२।।

प्रदीपतो वस्तु यथा प्रकाशते
निधिश्च सिद्धाञ्जनतोऽजसा यथा ।
तथा गुरूणां परिचर्ययाऽऽखिलं
श्रुतं कुमारस्य मुखे समस्फुरत् ।।२३।।

अयं धनुर्वेदमशिष्यतात्मनः
पितुः प्रयत्नात्कृतधीर्यथाविधिः ।
यतः प्रसूनेषुभिरेष विश्वजिद्—
धनुर्धराणां धुरि विश्रुतस्मरः ।।२४।।

1-ब. अनारतप्रेम बभार तावपि
2-ब. पलन्निति
3-अ. कीकरौ

निषेव चन्द्रं सरसीव पङ्कजं
लतेव पुष्पाकरमाकरं मुदा ।[1]
तनुस्तदीया नवमेत्य यौवनं
मनांसि केषां न जहार पश्यताम् ।।२५।।

समासजत्तन्मतिरर्थकामयो—
र्विना न धर्मं सततं श्रुताश्रिता ।
यतः स सत्वाधिकतामुपागतो
रजस्तमोभ्यामतिवाहितो न हि ।।२६।।

स एक एवेन्दुरिवाप्सु पश्यतां
सहस्रदा हृत्सु सदा व्यरोचत् ।[2]
जनस्य तस्मिन् हृदयानि मानसे
सरोरुहाणीव सहस्रशोऽभवन् ।।२७।।

समं वयस्यैः स निरन्तरं वसन्
कलासु लीलाललितोऽस्ति शीलवान् ।
जगत्त्रयीमोहनरूपसंपदा
पदं न कासां हृदि सुभ्रुवां दधौ ।।२८।।

चिराय तद्वासनया निजं पतिं
प्रियानिरुद्धेति निगद्य काचन ।
प्रिये त्वदन्या न रुणद्धि मामिति
प्रियोत्तरेणैव मनस्यलज्जत ।।२९।।

अलङ्करोष्यङ्गणमङ्गसञ्चरन्
न तल्पमेष्यत्युपकल्पितं कुतः ।
स्मिताननोप्युत्तरदोसिनाक्षप—
भ्रमेक्षितं चेति जगाद काचन ।।३०।।

1-अ. मुदाम्
2-ब. व्यरोचता

परा सखीस्कन्धनिषक्तदोर्लता[1]
क्व स क्व स प्रोक्तवती तमैक्षत ।
मुमूर्छ तस्मिन्नवतीर्णदृक्पथे
चिराय तस्याध्वनि बद्धशून्यदृक् ।।३१।।

विधाय चित्रे परिरब्धुमुद्धरा
तमालिमालोक्य चकावलज्जत[2] ।
निरीक्ष्य तत्कोयमलेखि सुन्दर—
स्त्वयेति वक्तुं न शशाक सापि वा ।।३२।।

अदृश्यत स्वप्नसमागमे सदा
कदापि दृष्टः स कयापि बालया ।
तदात्मभावं गतयान्यया पुन—
[3]र्मुदा हृदालक्ष्यत वीतनिद्रया ।।३३।।

सहस्रनेत्रः सुरलोकनायकः
स वज्रपाणिः स्वपिति क्षणं यदि ।
विलोक्य लोकोत्तरयौवनश्रियं
[4]समुत्सुको नेति किमप्सरोगणः ।।३४।।

सुधामुधास्वःसदनं सनन्दनं
न नन्दनं किं हरिचन्दनं घनम् ।
इदं तमुद्वीक्ष्य हृदा चचक्षिरे
तदङ्गसङ्गेन विना सुराङ्गनाः ।।३५।।

अतः प्रसङ्गाद्गुरुसन्निधौ मतो
हृदाऽऽनिशं ध्यानवशेन भावितः ।
अकारि साक्षादिव भोगिनीजनै—
रवीक्षितोऽभ्यासवशेन सुन्दरः ।।३६।।

6

1-ब. निषिन्नदोर्लता
2-ब. लज्जता
3-अ. मुदा हृतालक्षत
4-ब. स किं तदा नैति तमप्सरो गण :

अथ निखिलनतभ्रू गर्वसर्वस्वनेत्रीं
सममविदितपूर्वां कामिने बाणपुत्रीम् ।
तमपि पुरुषजातौ रत्नमस्यै मृगाक्ष्यै
क इति नमति मत्यै दर्शयामास निद्रा ॥३७॥

समजनि स विभाते विस्मयोत्फुल्लनेत्रः
पुलकिततनुवल्लिः साप्युषा स्वप्नभावैः ।
द्वयमपि सममेव प्राप तुल्यामवस्थां
[1]किमिव न हि विभाव्यं कर्मणां प्राक्तनानाम् ॥३८॥

कामो विवेश हृदि तस्य महामहिम्नः
सद्योऽनुसृत्य सुभगां नवयौवनेद्धः ।
सिन्धोः किमन्तरुपयाति सरस्वतीं चे —
न्नाधिश्रयेन्मुनिसमेधितशक्तिरौर्वः[1B] ॥३९॥

आदौ ननर्त बहुधाधिपतिः[2] पशूनां
रामो भ्रमात्किमु[3] जगाम न दण्डकायाम् ।
केऽन्येऽपि वामनयनाहृतचित्रचित्ता[4]
नोन्मादमापुरिह काममहाग्रहेण ॥४०॥

का सा ध्रुवेति[3B] सुतनुः कथमाप्यते वा
नो वेद्मि वच्मि कमिति स्वयमाप्तलज्जः ।
[5]विद्वांस्तदेकविषयीकृतजीविताशः
सोत्कण्ठमित्यनुवदन्न तदा व्यरंसीत् ॥४१॥

सोल्लासमास्यममले मुकुरे स्वपृष्ठात्
पश्यन्त्यवेक्ष्य सपदि प्रतिबिम्बितं माम् ।
प्रेमत्रपाशवलितैर्वलितैः कटाक्षै —
र्द्वित्रैरनागसमिमामनयद् दशां सा[6] ॥४२॥

1-अ. भवति हि किमसाध्यम् । 1 B ब. युधिसयोधितशक्तिरौर्वः । 2-अ. बहुधाधिपति ।
3-अ. जगाद । 3-B अ. क्वेति । 4-अ. चित्रवित्ता । 5-अ. द्वन्द्वं । 6-अ. दशं सा ।

लीलाकुञ्चितलोचनाकृतवती सा कर्णकण्डूयनं
मां दृष्ट्वा सुरकामिनीति न च नो चक्षुःश्रवः कन्यका ।[1]
रूपं तन्न च मानुषीषु घटते[2] दिव्यैः वचेत्सुन्दरी
सृष्टिः काचन मान्मथी भवतु सा लोकोत्तरा मोहिनी ॥४३॥

धैर्यं हि यावदवलम्ब्य शुचिस्मितां तां
सम्भावयाम्युपगतां श्रवणीयवाचा ।
निद्रागता झटिति तावदसूययैव
[3]ह्लोणे वशासि शिवशिवात्मनि मे निलीना ॥४४॥

पूर्णेन्दौ वदनोत्पवो मधुकरश्रेणीषु वेणीभ्रमो
मीने लोचनचेष्टितं कुचयुगश्रोःश्रीफले श्रीमति ।
हंसे हंसगतिः[3B] प्रतप्तकनके कान्तिः प्रसूने स्मितं
दृश्यन्ते तव ते त एव दयिते भावा कदा त्वं पुनः ॥४५॥

ननु दुर्लभा वरतनुस्तनुं पुनः
पुनरेष पञ्चविशिखः क्षिणोति मे ।
क्षणमक्षिदक्षिणमपि स्फुरत्यहो
सह बाहुनेति हृदयं प्रसीदति ॥४६॥

अहो निमित्तैरनुमोदितस्य
[4]सुदुर्लभा सेति निमीलितस्य ।
समुत्पतन्नाशु पुनः पतन्मे
मनोरथः कन्दुकतामुपैति ॥४७॥

जलदेन चातक इवाम्बुधारया
सुधया चकोर इव शीतरोचिषा ।
किमु योज्यतेऽपि विधिना फलश्रिया
[5]मम तत्परः परमयं मनोरथ. ॥४८॥

1-ब. श्रवत्कन्यका । 2-अ. दिच्छर् । 3-अ. ह्लीणोवश्यासि ।
3-[B] ब. हन्तगतिः । 4-अ. नदुर्लभा । 5-अ. किमतः परः परमयं ।

इति बहुविधजल्पं कल्पयित्वानिरुद्धः
कतिचिदपि विनिद्रः स व्यनैषीद्दिनानि ।
कृतमतिरिति चाभूद्धार्मिकाणां दुरापं
विधिरभिमतमर्थं साधयिष्यत्यवश्यम् ।।४९।।

अरतिं वहन्नतनुजां[1] स्वजीवितं
विभरांबभूव स कथं कथञ्चन ।
परिलिख्य चित्रफलके तथैवता—
मवलोकयन्निजमनो व्यनोदयत् ।।५०।।

श्रीकाश्यां शिवदश्रियां समधिकश्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीघनदेश्वरेण कविना सर्गस्तृतीयोऽजनि ।।५।।

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये स्वप्नसंदर्शनो नाम तृतीयः सर्गः ।

— ० —

1 अ वहन्नतमुजाम् ।

चतुर्थः सर्गः

अथ मनोरथसाधनशिल्पिनीं
करणसौष्ठवसूचितसौहृदाम् ।
निशि ददर्श स कामपि योगिनीं
विगतभीर्वलभीशयनीयगः ।।१।।

प्रथमसंगतयोरिव[1] तत्क्षणात्
प्रणयहर्षविकाशितचक्षुषोः ।
हृदयदूत इवार्जवलक्षणं
क्षणमभूदुभयोरभिवीक्षणम् ।।२।।

विमलतैव मनोमुकुरे परा—
प्रकृतिरत्र यतः प्रतिभासते ।
विगलिताखिलसंशयसञ्चयं
सुकृतिनां[2] जननान्तरसंगतिः ।।३।।

अथ यथोचितसंभृतसत्क्रियां
समुपवेश्य स तां समुपाविशत् ।
अविदितेऽपि जने गृहमागते
न महता क्रियते ह्यवधीरणा ।।४।।

इति च वक्तुमसावुपचक्रमे
विनयपूर्वमपूर्वगुणाकरः ।
उपगतार्थिमनोरथसाधनं[2]B
क्व न वदान्यजनः स्वयमुत्सुकः ।।५।।[3]

इह सुदर्शनरक्षितगोपुरे
न हि हितेतरसङ्क्रमणं[4] पुरे ।
अयि हितेति मतासि सुदर्शनं
तव वपुः पुनरुक्तयतेऽपि तत् ।।६।।

1-व. सगतयोरिति । 2-अ. सुकृतिनी । 2-व. साधने ।
3-अ. उभयार्थं : श्लोकोऽयम् । 4-अ. सरसं क्रमणम् ।

[1]किममरीति न वक्ति तवाकृतिः
स्फुरति शक्तिरियं यदमानुषी
अपि यदर्थमिहागमनं तव
प्रियतमं कतमन्मम भावितम्[2] ।।७।।

सकुतुकोऽस्मि समुक्तसखीजनो
जनपदः कतमोऽद्य भविष्यति ।
अपि च मां भवतीह समागता
किमुपदिश्य कृपामभिनेष्यति ।।८।।

इति वचोऽस्य निशम्य सुधासमं
स्मितमुखी करणीयसमादरा ।
इदमुवाच गभीरमतिर्गिरा
मधुरयाऽन्तरभावसुभूषया ।।९।।

सुभग ! साधु ! भवान्सुधियां वर—
स्तव वचो न मृषा श्रुतिपारगा ।
फलितमेव मनोरथभूरुहैः
यदि दृशोः पदमस्ति भवादृशम् ।।१०।।

सुजन ! सा जननी जनकोऽस्ति स
स्तुतिपदं यदपत्यमनुत्तमाम् ।
त्वमिव यो द्विषतामिव योषितां
हृदि निवेश्य करोषि विनिद्रताम् ।।११।।

जनमनोहरणप्रवणात्ततिः
कृतिरपि श्रुतिसंमतिशालिनी ।
[3]तदुभयात्तु गुणश्च फलोदयः—
स्त्वयि विचक्षण ! वस्तु किमस्ति न ।।१२।।

1-किममरीति इत्यारभ्य षट् श्लोका अग्रन्थे न विद्यन्ते । 2-ब. तनु ।
3-ब. तदुभय—गुण ।

कुलमहो विमलं सुकृते रति—
र्न रतिरेनसि सज्जनसङ्गतिः ।
रसवती रसना च सुशीलता
जगति जन्मफलानि तवैव षट् ॥१३॥

अरिवधूपरिगीतपराक्रमः
सततमर्थिमनोरथपूरकः ।
उपकृतिः प्रकृतिः सुकृतैः कृतै—
र्भवति कश्चन वीर भवादृशः ॥१४॥

गिरिसुता चरणाम्बुजसेविनी
प्रणयपेशलबाणसुता सखी ।
अहमभङ्गगतिप्रथिताख्यया
चतुरचित्रपदाङ्कितलेखया ॥१५॥

गगनगा सुभगाद्यदृच्छया
समनुलक्ष्य सखीं तव सन्निधौ ।
अहमवातरमत्र तु चित्रगा—
म ह ह! तामवलोक्य सुविस्मिता ॥१६॥

निपुणपाणिरयं तव रागवा—
[1]न्वदति सा लिखिता भवतेति माम् ।
कथमपश्यदिमामतिदुर्लभा—
मिति विसंवदतीह मतिर्मम ॥१७॥

निरुपमाकृतिदर्शनकौतुकात्
किमु घुणाक्षरवत्किमथान्यतः ।
मम सखी लिखिता सुभगान्वया[2]
वद न चेन्मयि वक्तुमनौचिती: ॥१८॥

1-व. वदति सा खिलता । 2-व. सुभग ! वत्या ।

मधुरदर्शनदर्शनमादरः
प्रणयवागमृतं च तवाधुना ।
मम मनः समतोषयदित्यहो
उपकृतिं कृतिनः करवाणि काम् ।।१९।।

इति स तत्तटिनीवचनामृतं
परिनिपीय करीव मदालसः ।
विदिततत्करिणीपदपद्धतिं
पुनरुवाच घनध्वनिरुत्सुकः ।।२०।।

अयि जगद्गुरुत्रामविभागिनीं
नतसुरासुरसेव्यपदाम्बुजाम् ।
मम मनो निशमागमदेवतां
स्मरति हंत ! शिवेतरशान्तये ।।२१।।

बहुमता भवती गिरिजानुगा
[1]पुनरिह प्रणयाद् गृहमागता ।
अकथनीयमथाकरणीयकं
मम किमस्ति ततः पुरतस्तव ।।२२।।

कथयतां कथयामि कथं पुनः
प्रथममेव ययापहृतं मनः ।
सखि ! सखीवशगा ननु ते शनै—
र्मम समानय तद्वशगं मनः[2] ।।२३।।

विषयतां न मनो न तथेन्द्रियं
तदुभयत्वमियाद्विषयोऽपि न
मम मनो विषयेन्द्रियतामगा—
त्तव सखी स्वयमेव तदद्भुतम् ।।२४।।

1-ब. पुनरपि । 2-ब. वशगमनः ।

अजनि सा सुदती निशि निद्रया
तव सखी मम दर्शनगोचरा ।
अहमहो विदधे सहसा तया
कुपितशंबरवैरिवशंवदः ।।२५।।

अतनुरप्यतनुस्तनुभेदने
न कुसुमानि शराभिदुरं ध्रुवम् ।
रतिरभूदरतिश्च तया विना
वयमपीति मतं न हि ते वयम् ।।२६।।

अयि कलाभिरुदारगुणोऽग्रणीः[1]
सुमनसां मनसां परितोषणैः ।
हिमकरोऽपि करोति हिमे रतिं—
समय एव गुणागुणकारणम् ।।२७।।

अहिसमाहितचन्दनकाननात्
परिमलं गरलं मलयानिलः ।
वहति येन तरूनधिवासय—
न्विरहिणः स हि किं न हिनस्ति नः ।।२८।।

अपिहितं[1] न हृतं न हितं यथा
भवति मर्मणि शल्यमणोरणु ।
स्मरणमस्मरणं च मृगीदृशो
हृदयदारणदारुणकारणम् ।।२९।।

भवति वस्तु पृथग्नहि जीवतो
भ्रमति शून्यमिदं परितो मनः ।
विरहितो विहगः प्रियनीडतः
क्वचन कामपि नैति रतिं यतः ।।३०।।

1-अ. हृतम् ।

हृदयसङ्गतया हृदये हृते
तदनुवादविधावहम क्षमः ।
लिखितया कथमप्यनया कृतः
सखि ! पुनः समुपेतमना मनाक् ॥३१॥

अलमियं कुरुते कतरत्पदं
विमलयत्यथवा कतमत्कुलम् ।
[1]श्रुतिसुधामथवा कतमाभिधा-
मिति तथापि मनो मम सीदति ॥३२॥

इति च सङ्कुचिते हृदयाम्बुजे
स्वनति लीनमनोरथषट्पदे ।
रचयितुं चरितार्थमिदं प्रभु—
र्भवति मित्रमपास्य न ह्रीतरः॥३३॥

अशरणस्य ममाधिमहोदधौ
विधिवशात्तरणिस्त्वमुपागता ।
अथ समुत्सहते भवतीह चेत्
फलतु जीवितमद्य मनोरथैः ॥३४॥

किमु वदेदियमित्यमुमाकुलं
प्रियसखीस्मरणस्मरकातरम् ।
सुभगसिद्धमिदं गिरिजावरा-
न्मृदुगिरेति सखी समतोषयत् ॥३५॥

प्रणयमङ्कुरितं विधिनास्य सा
मनसि पल्लवितं स्वसमागमात् ।
कुसुमितं फलितं च विधित्सती[2]
पुनरसिंचदिमं स्ववचोमृतैः ॥३६॥

1-ब. श्रुतिसुधां कतमामथावभिधा । 2-अ. विधत्सती ।

नयनयोरनयोः फलदायकः
सुभग ! चेदभवः फलितं ततः ।
प्रियसखीसुकृतैर्गिरिजापदै—
स्तव गुणैर्वयसा मदनेन च ॥३७॥

यदणुवानणु वा करणीयकं
न सुकरं न च किञ्चन दुष्करम् ।
निपुणता निपुणस्य हि नामका
फलितमस्ति यतो विधिकर्तृकम् ॥३८॥

अपि कुलं नगरं च तथाभिधा—
मसमबाणकृतां[1] विषमां दशाम् ।[2]
त्वयि निविष्टहृदः सुदृशो यथा[3]
स्फुटतया कथयामि निशम्यताम् ॥३९॥

इति[4]निभृतां स्थितां प्रियसखीं हृदि तस्य सखी
विवृतवती गुणैरजनि तस्य मुदे मुदिता ।
सुखमनुभूयतां सुभगयुग्ममयोगहृतै—
रिति मनसैव सा कृतवती तमुवाच पुनः ॥४०॥

मान्यं गूर्जरभूभृतां कविमधिश्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण चतुरः सर्गश्चतुर्थोऽजनि ॥४१॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये मनोरथसाधनोनाम
चतुर्थः सर्गः ।

—०—

1-अ. ब बाणकृताविषमा । 2-अ. दशाः । 3-ब. सुदृशोऽधुना । 4-ब निसृतम् ।

पञ्चमः सर्गः

जयति सम्प्रति दैत्यकुलोत्तमः
सुरपतेः पदवीमनुशास्ति यः ।
प्रकटयन्नरहरिं निजभक्तितः
स्वजनकाय ददौ परमं पदम् ।।१।।

जगति गीतयशास्तनयो महा—
नजनि तस्य विरोचनसंज्ञकः ।
मनसि कस्य न यस्य चमत्कृतिं
सुकृतिनः कृतवान्गुणसंचयः ।।२।।

समभवत्तनयोस्य बलिर्बली
[1]क्रतुशतान्तमविघ्नमुपेयिवान् ।
अतिथिमाप्य स कैतववामनं
त्रिभुवनं विससर्ज समुत्सुकः ।।३।।

अथ सहस्रभुजोऽस्य सुतो जयी
[2]जयति बाण इति प्रथितो गुणैः ।
अनुकुमारमसौ खलु पुत्रितः
प्रणयमिच्छति भूतपतेरपि ।।४।।

वसति शोणितनाम्नि पुरे परै—
रविजिते ज्वलनावृतिदुर्गमे ।
समरशौण्डतयाऽऽर्जितसंपदा—
मनुभवन्स्वजनैः सुखमुत्तमम् ।।५।।

सुभग तस्य सुतास्ति गुणोत्तमा
स्फुटमलक्षतया गिरिजान्तिके ।
इयमुषेति चिरेण सखीजनै
र्विदधती कुसुमाञ्जलिमर्चने ।।६।।

1-अ. क्रतुशतं तमविघ्नमुपेयिवान् । 2-अ. जगति ।

[1]इयमुषेन्दुकलेव महोदया
 परिणयावसरे भवती यथा ।
इति जयावचसा गिरिजां भज—
 न्निजमुदाहरणं स्मरणादिमाम् ।।७।।

स्वगुणरूपसमानवरैषिणीं
 भृशमुमां निजपूजनतत्पराम् ।
निशि पुरा स्वपती यमवेक्ष्यसे
 स पतिरस्तु तवेति जगाद ताम् ।।८।।

अथ गतेषु कियत्सु दिनेषु सा
 निशि सुखं स्वपती सहसोत्थिता ।
अहह ! कान्त विमुञ्च विमुञ्च मा—
 मिति निगद्य भृशं विषसाद च ।।९।।

हर हर स्मरभोगिविषार्दिता
 गतवती परमूर्च्छनमूर्च्छनाम् ।
श्रुतिपुटे घटयन्त्यगमं शिवा
 वरमनुं (?) लघुजाङ्गुलिकास्पदम् ।।१०।।

अथ निषिक्तमुखी शिशिरैर्जलैः
 कमलिनीपवनैर्मृदुवीजिता ।
अनुमितश्वसनादरकम्पना—
 दयि हृदोऽजनि सा तु सचेतना[2] ।।११।।

इति चिराय विहाय तमस्विनी
 मुखसरोजचलेक्षणषट्पदा ।
निबिडकण्टकिता नलिनी यथा
 [3]श्वसितसौरभमङ्ग ससर्ज सा ।।१२।।

1-अ. 'इयमुपे' नास्ति । 2-ब. सुचेतना । 3-ब. श्वसनसौरभ ।

किमिति मत्कथिते[1] त्रपयाकुला
स्मरति किञ्चन हृष्यति वेपते ।
अभिमुखं च समीक्ष्य रसादसौ
सरसिजेन मुखं पिदधाति च ॥१३॥

इति विचार्य तदाकृतिचेष्टितं
बहुविनिश्चितवत्यवदं[2] पुनः ।
निशि निविश्य य एष हृदि स्थितः
स्मरसखः सखि ! वेत्सि क इत्यमुम् ॥१४॥

अविहितप्रसरामिह नर्मदा—
मपि रुणद्धि सदैव सरस्वतीम् ।
तमतिलज्जितवारिनिधिं क्रुधा
पिबतु किं न मनोभवकुम्भजः ॥१५॥

मदनवश्यतया गलितं ह्रिया
विदितमेव समस्तमथानया ।
अकथने त्वधुना स्वयमुज्झिते
विफलमेव सखी निजजीवितम् ॥१६॥

इति चिरं परिचिन्त्य हृदा मनाक्
शिथिलयन्त्यनुबन्धमियं ह्रिया ।
[3]श्वसितशुष्पदमंदरदच्छदा
वलितवर्णमुवाच वचस्तदा ॥१७॥

स हृदि मेऽस्ति न वेद्मि विसंगतं
तमथ वेद्मि स कः क्व च वेदकः ।
इति महागहने सखि ! निद्रया
परिहृताऽस्मि गतिस्त्वमथासि मे ॥१८॥

1-प्र. मत्कथना । 2-ब. निश्चतवन्त्यविदं पुनः । 3-प्र. श्वसितशुष्पददतीव रदच्छदा ।

रचय चित्रगतं तमितीरिता
चरमया तदसावुपचक्रमे ।
चलति नो फलके करतूलिका
चलति चेन्न च मुञ्चति वेपथुम् ।।१९।।

श्रमजलार्द्रकरच्युतलेखनी
गतवती ग्लपनां मृदुवादिनी ।
भुवनसुन्दरवस्तुविलेखने
जनमिमं सुदती पुनरादिशत् ।।२०।।

प्रथममेव मया लिखिते विधा-
विति जगाद विलक्षमुखच्छविः ।
अयि ! कलाः सकलाः कलयन्शशी
प्रियकलामपि नार्हति षोडशीम् ।।२१।।

तदनु सेन्द्रमवेक्ष्य-कृतस्मिता
[1]मृदु यदुक्तवती विदुषीति माम् ।
स किमलेखि यदत्र दिवस्यता—
वभिलषन्ति परं त्रिदिवस्त्रियः ।।२२।।

उपकृतं महदालि ! यदश्विनौ
समलिखस्त्रिदशा रतिहारिणौ ।
मम तु याविति निश्चिनुतो हृदि
प्रियतमः शिशिरो विधिरुत्तमः ।।२३।।

ग्रहकुले जयति स्वमहौजसा
प्रथयतीह पुनः कमलाकरः ।
अपि समो रविरस्य तुलां भजन् -
यदि स नोर्ध्वगतिर्न च नीचगः ।।२४।।

1-अ. अपयदुक्तवती ।

गगनगोऽपि सुरूपतया बुधः
किमु भवेन्न विचारवशादधः ।
अपि तदीयगुणैर्न तथा वरः
सखि ! कुबेरसुतो[1] नलकूवरः ॥२५॥

जलनिधिं परिपूरय मेरुणा
तमथ मेरुमिहैव निमज्जय ।
यदि वितृष्णयतोऽर्थिजनान्न तौ
विगनयोर्गुरुतां च गभीरताम् ॥२६॥

अतनुचित्रकृतौ क्व तवोद्यमः
क्व लिखितौ मलयानिलमाधवौ ।
अनुचरादयि ! तस्य हि ते मताः
[2]सखि ! तमर्थममी त्वरयन्ति यत् ॥२७॥

स्थितिमुपैति न चक्षुषि तक्षकः
किमुत वासुकिरुत्सुकमानसे ।
अपि च शेषमशेषफणीश्वरं
किमिति वेत्सि न तत् पितृसेवकम् ॥२८॥

सखि ! शतं लिखिता पुनस्त्वया[3]
तदनुपाण्डुसुताः सुमहौजसः ।
अभिलषन्ति सह प्रणयं मम
प्रियतमेन न ते समतैषिणः ॥२९॥

इति जगत्त्रितयोत्तमवस्तुषु
स्फुटतरं लिखितेषु मया सखी ।
अरुचिमाप्तवतीं सहसाददे
यदुकुले दृशमाकुलतारकाम् ॥३०॥

1-ब. सुवेनसुतो । 2-ब. सखि ! तदर्थममी । 3-अ. पितृसेवकः ।
4-अ. ब. पूर्वस्त्वया ।

इह भवेदिह वेति च वादिनी
स्फुरितहर्षदवामविलोचना ।
सबहुमानमेवक्ष्य हरिं भवे—
दिति स कश्चिदमुष्य मुदाऽवदत् ॥३१॥

प्रद्युम्नं तदनु निरीक्ष्य गौरवं सा
विभ्राणा किमपि जगाद मां मृगाक्षी ।
कान्तस्यास्य च सखि ! नान्तरं तथापि
व्यक्ति मे न स इति मानसं व्यनक्ति ॥३२॥

मुग्धे ! त्वत्कठिनकुचान्तरेषु लीनं[1]
कान्तं तं कथय कथं लिखामि चित्रे ।
उक्तैवं सपदि तिरोनिमीलिताक्षी
मन्दाक्षादभिमुखमैक्षतैव नोचे ॥३३॥

चित्रे त्वां लिखितमवेक्ष्य पङ्कजाक्षी
मन्दाक्षात्किमपि पराङ्मुखी भवती ।
संख्यानान्तरतरलैरपाङ्गभङ्गैः
सोत्कण्ठं मुहुरवलोकयाञ्चकार ॥३४॥

नायं [2]स्यादपरमथ लिखामि मुग्धे
[3]सार्धोक्तौ मम करलेखनीं गृहीत्वा ।
प्रत्यूचे नयनफलोदयेऽपि जाते
नो जाने किमपरमिच्छतीति चेतः ॥३५॥

यावत्ते नयनपथातिथिं विदध्यां
कान्तं तं ननु तव का गतिस्तु तावत् ।
उक्तैवं[5] निभृतदशा तु चित्रपत्रं
पश्यन्ती स्फुटमिव सोत्तरं ददौ मे ॥३६॥

1-ब. कुचान्तरे निलीनम् । 2-अ. स्यादपरो । 3-ब. सार्धोक्ताविति । 4-ब. ग्रही ।
5-अ. निभृतदशा

दैवात्त्वामथ तदवस्थमेव सख्याः
प्राप्ताहं सुभग ! न संशयोऽत्र कार्यः ।
सिद्धीनां सुकृतबलेन भाविनीनां
जायन्ते प्रथमत एव साधनानि ।।३७।।

इत्युक्तं सुभग ! मया समस्तवृत्तं
तन्वङ्ग्याः परमथ सङ्गमोत्सुकायाः ।
आधारो भव खलु जीवितस्य तस्याः
सर्गे वां भवतु कृतार्थता विधातुः ।।३८।।

[1]प्रतिपदेव तयोदयमात्मनो
नव इवेन्दुरुपेत्य स तां पुनः ।
अभिमुखप्रसरत्स्मितचन्द्रिक-
स्तरलतारकचारुमबोधयन् ।।३९।।

अयि सुसिद्धमिदं प्रतिभाति मे
त्वदुररीकरणादपि दुष्करम् ।
प्रणयतो वदनाम्बुजनिर्गता
न सुजनोक्तिरभीष्टविलम्बिनी ।।४०।।

तदिदमिच्छमिति प्रतिगृह्य सा
वचनमस्य जगाद महोत्सवम् ।
बलवती सुकृतिन् ! भवितव्यता
भवति वीर कथञ्चन केनचित् ।।४१।।

अपि नयामि भवन्तमिमामहं
न हि चिरादिति सत्यवचो मम ।
भवतु सा[2] तव लोचनकौमुदी
शिव इवेन्दुकला त्वयि सुन्दरी ।।४२।।

1-अ. प्रतिपदैथे । 2-ब. वनलोचना ।

मार्गोऽयं सुभग न दुर्गमो भवन्तं
दोलास्थं गगनपथेन मे नयन्त्या:[1] ।
योगेऽस्या: पुनरिह भावि यत्सुखं ते
तद्वाचां भवति न गोचर:[2] कदाचित् ।।४३।।

इति घनरसधारां चित्रलेखाप्रसङ्गात्
तृषित इव स वाञ्छंश्चातक: तां समुत्क: ।
गगनगमनमुच्चैरन्वमंस्तानयाहो
विषयरसविभिन्ना: साहसं किं न कुर्यु: ।।४४।।

रचयितुमतमस्कां स्वां सखीं चारुतारां
सुरवकरकरलीलालम्बिनं तं विधाय ।
गगनपथमथोच्चै: पक्षपातैकदक्षा-
तिथिरतिथिमिवेन्दुं पूर्णिमा सा निनाय ।।४५।।

जलदनलकरालस्फारवप्रप्रभाभि-
र्द्विगुणमरुणरागं कुर्वदाविर्बभूव ।
कनकशिखरशृङ्गोत्तुङ्गहर्म्याजाग्र-
त्तरलतरपताकं पत्तनं दैत्यभर्तु: ।।४६।।

स्फुटकमलमुखीनां पद्मिनीनां सखीनां
भ्रमरललितगानैस्तौ निशान्तं विदित्वा ।
सपदि[3] समवतीर्णविबरात्सोऽत्र केली
वनसरसि निविष्ट: सा निजालिं जगाम ।।४७।।

[4]श्रीकाश्यां शिवदश्रियां कविमधि श्रीरुच्छरङ्ग: पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण सुखद:[5] सर्गोऽभवत्पञ्चम: ।।४८।।

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये शोणितपुरप्रवेशोनाम पञ्चम: सर्ग: ।

1-ब. गगनपथेमेनयन्त्या: । 2-अ. ब. गोचर । 3-अ. समवतीर्णविंशवत्सोत्र-केली । 4-ब. काश्यां कश्यपवंशभूसमधिकश्रीरुच्छरङ्ग: पिता । 5-स. कविना ।

षष्ठः सर्गः

प्राभातिकं विधिमुपास्य सरस्युदारे
सम्प्रेष्य बाणतनयां प्रति चित्रलेखाम्
उत्कण्ठितं निजमनोऽथ विनोदयिष्यन्
स्कामी स तत्प्रमदपूर्ववनं विवेश ।।१।।

आस्थानमुत्तमसमस्तमहीरुहाणां
सत्पुष्पपल्लवफलोज्ज्वलवेषभाजाम् ।
विद्यैकपीठमलिकोकिलपक्षिजाले
राज्यास्पदं मधुविभोः शरणं स्मरस्य ।।२।।

नीलैर्महीखचितरत्नरुचिप्ररोहैः
दूर्वारुचिं जनयदेणकिशोरकाणाम् ।
मत्तं मृगं स्फटिकभूषु जलाभिलाषात्
प्राप्तं युयुत्सुमपि कुर्वदधिस्वबिम्बम् ।।३।।

धारागृहेण खचितैर्मणिभिर्विचित्रै-
राविष्कृतेन्द्रधनुषा किरताऽम्बुधाराः ।
नृत्तप्रवृत्तमुरजप्रतिशद्वभाजा
मेघोपमेन शिखिना मदयन्कुलानि ।।४।।

[1]क्लिप्तेन हेमकदलीभिरुपत्यकायां
शृङ्गाग्रपातिरुचिरस्वननिर्झरेण[2] ।
[3]भोगोपयोगकमनीयगुहागृहेण
शैलेन शोभितममन्दशिलातलेन ।।५।। पञ्चभिराद्यकुलकम् ।

आलोकनं[4] चटुलभृङ्गकटाक्षचारै-
र्मन्दस्मित विकचकुन्दलताप्रसूनैः ।
आकारणं चलदशोकदलाङ्गुलीभि—
राभाषणं पिकवधूमधुरानुलापैः ।।६।।

1-अ. 'क्लिप्तेन हेम' इत्यनुपलब्धम् । 2-ब. अस्वरनिर्जरेण । 3-अ. 'योग-कमनीय' इत्यनुपलब्धम् । 4अ-. 'आलोकनं चटुल' इत्यनुपलब्धम् ।

आछोटनं समकरन्दपरागपूरै-
  रालिङ्गनं मृदुलशीतसुगन्धिवातैः ।
उल्लेखनं नखशिखोपमकेतकाग्रै -
  रुत्कूजितं विदधती च कपोतनादैः ।।७।।

श्यामा तनुः शिखिकलापललामकेशी
  प्रोत्फुल्लपङ्कजमुखी मृगशावनेत्रा ।
आपक्वदाडिमकुचा कदलीवरोरुः
  प्रौढाङ्गनेव रतयेऽस्य बभूव वाटी ।।८।। त्रिभिर्विशेषकम् ।

कामोपतप्तहृदयाहितसन्धिबन्धैः
  प्रेमाङ्कुरामृतरसप्रसरैः प्रपञ्चैः ।
इत्याकृतो मनसि निश्चय एव यूनां
  नो हीयते प्रियतमा ललिताङ्गसङ्गात् ।।९।।

[1]पश्यन् स तं मृदुविराजविलासमस्या -
  मुज्जृम्भमाणमदनज्वरजातमोहः ।
ऊचे प्रियां सहचरीमिव मन्यमानः
  प्रादुर्भवद्विविधमानसराज्यलीलः ।।१०।।

रोचिष्णुरुष्णकिरणेऽपि सरोजमित्रं
  केशान्धकारसरणीकृतपृष्ठदेशः ।
वक्षोजचक्रयुगयोगरुचिर्मुखेन्दु-
  र्न क्वाप्यहो मृगदृशोऽस्ति कुरङ्गसङ्गी ।।११।।

[2]बाले रसालमधिगत्य पिकस्वरेण
  मामेत्रमाह्वयसि किं प्रियमण्डनास्मि ।
तन्मञ्जरीं विरचयामि तवावतंसं
  यत्र श्रियं वितरति भ्रमरः कटाक्षः ।।१२।।

1-अ. पश्यन् सन्तत भृज्जराजविलासमस्याम् । ब. पश्यन् सन्तत मृदुराज-विलासमस्याम् । 2-अ. बाले सजालमधिगत्यस्वकरेण ।

त्वन्नातिदूरगतिरत्र कटाक्षमोक्षै-
रानन्दयन्त्यसि भृशं तिलकं च मां च ।
आलिङ्ग्य तां कुरवको वसनान्तलग्न-
शाखस्तथा रचयितुं त्वरयत्ययं माम् ॥१३॥

किं तेन सुन्दरि ! कृतं सुकृतं कियद्वा
तीर्थे क्व येन यमिमं बहुमानपात्रम्[1] ।
प्रेम्णाभिराममसिरक्तमशोकमेकं
मञ्जीरमञ्जुचरणाक्रमणक्रमेण ॥१४॥

नेदिन्दिरः स्पृशति गन्धफलीमलीकं
स्यादेतदद्य दयिते यदि साधिरोहेत् ।
[2]कर्णेऽवतंसपदवीं तव मत्करेण
सङ्गं भजेत्खलु यतस्तदपाङ्गभृङ्गः ॥१५॥

मा दाडिमीं सुतनु याहि यतः स्तनौ ते
दृष्ट्वोन्नतौ मदनमङ्गलहेमकुम्भौ ।
तस्याः [3]फलान्यवनतानि न तानि किं तत्
ह्रीणानि भिन्नहृदयानि विलोकसे त्वम् ॥१६॥

आभाति कोरकचयः कुटिलः पलाशे
[4]रागी वसन्तसमये शितमूलभागः ।
आपीय शोणितमयोगजुषां कलङ्की
कामाज्ञयोदित इवेन्दुकलाकलापः ॥१७॥

मूले त्वदाननसमर्पितसिन्धुबिन्दून्[5]
मौलौ बिभर्ति बकुलो मुकुलच्छलेन ।
गायन्ति यन्मधुकराः सुरभीन्निपीय
कामोऽपि माद्यति मदात्ययमेति पान्थः ॥१८॥

1-अ. यमिमममम्बुपानपात्रम् । 2-अ. कर्णावतंसपदवीम् । 3-अ. फलान्यवतानि किं वा । 4-अ. सङ्गी । 5-अ. सींधु किंचिन् ।

[1]लोलालिधूमवलयं मलयानिलेन
पुन्नागकेसरहुताशमभिप्रकाश्य ।
चैत्रः स्वमित्रविभवाय पिकोक्तिमन्त्रै-
र्मीनग्रहं मृगदृशामनिशं जुहोति ॥१९॥

दक्षानिलभ्रमणमण्डलितालिवेण्यो
वेल्लत्सलीलनवपल्लवशस्तहस्ताः ।
गुच्छस्तनोन्मथनविश्लथपुष्पमुक्ता
नृत्योद्यता इव लता वनिता विभान्ति ॥२०॥

अङ्के कृतैकचरणाधृतचारुवीणा
छायातरुं श्रितवती भ्रमरस्वरेण ।
गायन्त्यसि प्रसृतनेत्रतटात्तकर्ण-
मभ्यर्णमेणगण एष निषेवते त्वाम् ॥२१॥

दूर्वाङ्कुरा इति मृगेण कराङ्गुलीया-
ल्लीढा मुदे मरकतद्युतयस्तवैताः ।
पश्याक्षिसाम्यमबलेऽत्र विपञ्चिकायां
त्वं पञ्चमस्वरमनु स्मरमीरयन्ती[2] ॥२२॥

पीत्वा मुखात्समधुपं मधु पद्मिनीनां
पौष्यं द्विरेफत्रसनं वसनं लतानाम् ।
आधूय यान्त्युपवनात्पवनाः पिकानां
[3]संभज्य पञ्च मलयान्मलयाङ्कखिङ्गाः ॥२३॥

इन्दीवरस्रगुपमां दधती मदङ्गे
शृङ्गे गिरे रचय किञ्चिदपाङ्गभङ्गी ।
चामी करात्मनि तदत्र चकोरनेत्रे
सा नीलरत्नरचना रुचिमादधाति[4] ॥२४॥

1-अ. लोलाभिधूम । 2-स्वरमीरयन्ती । 3-ब. संभाव्य । 4-अ-ब. दधातु ।

अध्यं दिनार्कतपदद्रिवनान्निवृत्ता
भृङ्गावली न ललिते त्वदपाङ्गपङ्क्तिः ।
शैलाधिरोहणमसाम्प्रतमुत्तमाङ्गि
तत्त्वां श्रमापनयाय सरो नयामि ॥२५॥

उक्ता सरोभिगमनार्थमपेक्षमाणा
मा मन्थरा त्वमसि सुभ्रु ! पुरो गता किम् ।
अन्वेमि पुष्पितलतासु विमोचयन्तीं
सिंहावलोकसुमुखीं सिचयाञ्चलं त्वाम् ॥२६॥

स्वेदोदबिन्दुनवमौक्तिकभूषितास्ये
श्वासोच्छ्वसत्कुचयुगं सुतनुस्तवोरः ।
हा हंसगामिनि ! नितम्बभरालसा त्वं
श्रान्तासि सुन्दरि ! न मामवलम्बसे[1] किम् ॥२७॥

उच्चावचावनिरियं लतिकालवालै-
र्भृङ्गावली तव मुखाभिमुखी विलोला ।
क्षामोदरी च भवती क्वचिदाकुला चेद्-
भावी तदा स्पतीति बत भग्नधन्वा ॥२८॥

आन्दोलितामिह लतां मलयानिलेन
मुञ्चाश्रु ते नयनयोर्निपतेत्परागः ।
तिष्ठाथवास्ति मम कौशलमब्जनेत्रे
तं चापनेतुमखिलं मुखमारुतेन ॥२९॥

श्लिष्टोऽनयाहमियमङ्गमया न वल्ली
कर्णे जपोऽसि किमले मलिनप्रियायाः[2] ।
विज्ञाहि सा स्वयमवैति मदीयवृत्तं
या त्वां निवारयति पाणितलेन भूयः ॥३०॥

1-अ. 'न मामवलम्बसे किम्' इत्यनुपलब्धम् । 2-ब. मलिनप्रियायाम् ।

ध्यानैकतानमनसा प्रतिभावमिच्छन्
सम्भावयन्भुवनरत्नमुषां वनान्ते ।
विश्रम्य रम्यतरुवीथिषु वीतखेदः
पालीमवाप सरसः सघनद्रुमालीम् ।।३१।।

नीलैर्नवोत्पलकुलैर्घनपद्मरागैः
छन्नं छदैर्मरकतैरिव पद्मिनीनाम् ।
शीताच्छमौक्तिकजलं च सुदूरपारम्
रत्नाकरः किमु सरः श्रियमत्र सूते ।।३२।।

आदाय कामगतिरम्बुधरो धरित्रीं
पातालतोऽमृतरसं नयतीति शङ्के ।
गर्जन्महोर्मिपटलं चलमीनविद्यु-
न्नानाब्जपङ्क्तिसुरचापमिदं सरो यत् ।।३३।।

क्षारेण किं जलधिना जलदैश्चलैर्वा
तृष्णातुरः किमु करोतु सजीवलोकः ।
इत्यस्तु जातसरिता किमु भूतधात्र्या
स्नेहाद्द्रवीकृतमिदं हृदयं तडागः ।।३४।।

तारोज्ज्वलाम्बुजतरत्तुहिनांशुहंसं
सोपानसाध्यघनपङ्क्तिविशेषशोभम् ।
ज्योत्स्नाजलं सगुरुमीनग्रहं नभोव-
च्चेतः सरो हरति कस्य न पश्यतोऽपि ।।३५।।

फुल्लारविन्दवदना चलमीननेत्रा
वीचीभुजानिबिडकोककुचा मनोज्ञा[1] ।
लीलामरालगतिशोभितटीनितम्बा
सा प्रेयसीव सरसा सरसी जहार ।।३६।।

1-अ-ब' मनोस्य

चञ्चत्सरोरुहरजः कपिशाङ्गभृङ्ग-
गुञ्जारवैः कथयतीव निजार्थसिद्धिम् ।
आश्वासनां स समियाय नितान्तखिन्नः
क्रीडासरोवरतरङ्गसमीरणेन ॥३७॥

स्नानाङ्गलग्नमतिसूक्ष्मसितं वसानां
वासः स्वकान्तिततिभिः कृतकौङ्कुमाभम् ।
दूरादुषामपि निरीक्ष्य स सन्दिहानः
तत्र स्थितः क्षणमथ स्वगतं जगाद ॥३८॥

केयं विलाससरसः सरसं विगाह्य
सोपानमार्गमधिरोहति पीवरोरुः ।
लीलासरोरुहकरा कमनीयकान्तिः
पद्मालया किमुत पद्मवनान्निरेति ॥३९॥

स्वच्छन्दचारकृतदुर्विनयापराधां
लोलां दृशं मम भृशं परिबध्नतीयम् ।
पीनस्तनान्तरनिवेशितकेशपाशैः
किं राजहंसगमना जलदेवता स्यात् ॥४०॥

[1]आर्द्रैकपाणितललम्बितकेशपाश—
प्रोन्मुक्तमौक्तिकलताजलबिन्दुमालाम् ।
हंसाय हन्त ! पिबतेऽर्पितकैरवाक्षी
स्नाताऽत्र मानस इवैति सरस्वतीव ॥४१॥

ईषद्दलत्कनककेतकपत्रकान्तिः
सन्ध्याभ्रखण्डरुचिशोणशिलातलस्था ।
लोलेक्षणा स्मितरुचं सहचारिणीषु
तारासु वा शशिकलेव तनोति तन्वी ॥४2॥

1-'आर्द्रैकपाणि' रयं श्लोकः वग्रन्थेऽनुपलब्धः ।

तत्क्षीरसागरतरङ्गमिव त्यजन्ती
श्वेतं जपारुणमथाम्बरमादधाना ।
सन्ध्योदिताभिनवशारदचन्द्रलेखा
धत्ते स्वभावसुषमामियमायताक्षी ॥४३॥

स्वप्नोऽथ चित्रमथवा निपुणेन्द्रजालं
तद्भावनापरिणतं मम वा मनः स्यात् ।
कामस्य विश्वजयिनो [1]जयदैवतं वा
[2]किंवा मनोरथफलं मम सैव बाला ॥४४॥

स्वप्नोऽयं न स जागरे सति भवेच्चित्ते स्थितं नेक्षते
चित्रं न श्वसितेन्द्रजालमपि न स्पर्शक्षमं जायते ।
आज्ञातं चिरतापिनाकृतकृपेणात्मीयशक्तिः स्वयं
नीता लोचनगोचरत्वमधुना कामेन सा प्रेयसी ॥४५॥

इत्थं नानाभरणरचनां कल्प्यमानां सखीभिः
कान्तां कान्तावयवरुचिभिः[3] रोचयन्तीं प्रतीत्य ।
पायं पायं नयनयुगले नैषतां जृम्भमाणां
प्रेमाम्बोधावकृतसुकृती मज्जनोन्मज्जनानि ॥४६॥

श्रीकाश्यां शिवदश्रियां कविमधिश्रीरूच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिलमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण[5] कुतुकः सर्गोऽत्र षष्ठोऽजनि ॥४७॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये[6] अनिरुद्धभ्रमनिरसनो नाम षष्ठः सर्गः ।

1-अ. कुलदैवतम् । 2-अ. साक्षान्मनोरथफलम् । 3-अ. ब 'कान्तावयवरुचि ।
5-ब. चतुरः । 6-ब. उषानिरुद्धो ।

सप्तमः सर्गः

मनोऽस्य तस्या तनुकान्तिसिन्धौ
चिरंन्तरदृष्टितरीनिविष्टम् ।
तां प्लावितां वीक्ष्य च हर्षवाष्पै-
रङ्गेषु मज्जद् क्वचिदाललम्बे ॥१॥

दृष्टेषु केशेषु तमस्सुमग्न[2]
स्तनान्तरे जर्जरमस्य धैर्यम् ।
नाभौ निमग्नं जघनात्पदाब्ज-
द्वन्द्वावधौ चाजनि नष्टविष्टम् ॥२॥

उच्चो कुचावास्पदमेत्य दृष्टि-
र्हा ! हारदोलाश्रयिणी पपात ।
प्रियस्य तस्या नतनाभिकूपे
र्नीचे निमज्जेत्तरलाश्रयो यत् ॥३॥

अणुप्रमाणं न मनो महत्त-
त्तदङ्गसङ्गे विदितं ममेदम् ।
विभर्ति भूरि स्मरविभ्रमाङ्गी-
मेतस्य तां वा कथमन्यथा तत् ॥४॥

श्रुतेति दृष्टेति गुणानुवादा-
[3]त्तस्यानुषङ्गे श्रवणेक्षणस्य ।
रसानभिज्ञा रसनाधरान्त-
र्गतागतान्यारभते रसार्थम् ॥५॥

पुरा श्रुतिभ्यामधुना तु दृग्भ्यां
[4]यथा निपीयेति यमयं मनः स्वम् ।
तथैव साक्ष्ये प्रणिधाय विज्ञां
तां वर्णयामास यथाङ्गमङ्गम् ॥६॥

1-अ. ब. रङ्गेषुमज्ज । 2-ब. तमस्सुलीनम् । 3-ब. तस्यानुपं मे ।
4-अ. यथानुपीतेयमयं मनः स्वम् ।

वंशः स धन्यो भुवि यस्य रत्नं
सेयं हि यस्या नतपृष्ठवंशे ।
मौलौ लुलन्ती मणिकाञ्चनश्री—
र्वेणी जयन्ती स्मरवैजयन्ती ।।७।।

नताङ्गमस्यास्तनुवृत्तमध्यं
स्मरस्य किं चाम्पकपुष्पचापम् ।
पृष्ठस्थवेणी च पदाग्रनम्रा
दृष्टश्च मौर्व्यावलिनिर्मिते[1] किम् ।।८।।

सीमन्तमन्तःसितकुन्तलानां
सिन्दूररागाङ्कमवैम्य मुख्याः ।
हृत्वा धृतं किं मम रागि चेत—
स्तमःसमूहे स्मरतस्करेण ।।९।।

सहस्रपत्रे शतपत्रजन्मा
बिम्बे विधोश्चाभ्यसनं विधाय ।
अहर्निशं सन्निपुणो मुखं तत्
द्वयोः श्रियास्याः खलु निर्ममे सः ।।१०।।

हेमाम्बुजेनापि हिमांशुना वा
वदन्तु साम्यं सुमुखीमुखस्य ।
ब्रूमो विनिश्चित्य विना प्रपञ्चं
मनोहरं किञ्चन नान्यदस्मात् ।।११।।

सुधा सुधांशुः कमलं स्मरस्य
चापं शरा वा शिखराणि वक्रम् ।[2]
सारोऽस्य तन्वीवदनाङ्गसर्गे
सर्वः समाप्तोऽजनि विश्वकर्तुः ।।१२।।

1-अ. निर्गते । 2-अ. शिखराणि······· ब. शिखराणि वग्र ।

तृतीयमिन्दोरपहृत्य भागं
किमिन्द्रनीलद्रुतिसूत्रपातात् ।[1]
विधिर्वधूभालतलं मनोभू—
चापोचितभ्रूरुचिरं चकार ।।१३।।

एतद्भ्रुवोः कामधनुः किलैक—
देशोऽस्तु विश्वैकजयप्रसिद्धम् ।
भ्रूभङ्ग एवैणदृशो यदस्यां
शरासनं पञ्चशरो बिभर्ति ।।१४।।

नेत्रे विचित्रे विहिते[2] विधात्रा
गरामृताभ्यां हरिणीदृशः किम् ।
यूनामनङ्गस्य च मोहजीव—
हेतू नितान्तं कथमन्यथा ते ।।१५।।

सिन्धोः प्रकृत्या जनिकर्तुरिन्दौ
गरामृते स्तः सुदृशौ दृशोश्च ।
तद्वन्मुखेन्दोः खलु ते वियोगे
[3]योगे च सन्दर्शयतः स्वमेषु ।।१६।।

स्यात्खञ्जनाम्भोरुहभृङ्गमीन—
चकोरनेत्रैरुपमानमक्ष्णोः ।
अमोघमस्त्रं तु दृशो मृगाक्ष्याः
कामस्य शृङ्गाररसैकसारः ।।१७।।

अक्षौ मृगाक्ष्याः स्मरयौवने द्राक्
उत्क्षिप्य नेत्रे परिदीव्यतः[4] किम् ।
सरागमन्मानसचारसारी—
चरे कुचश्रीफलयोः पणेन ।।१८।।

1-अ. नीलद्भुतिसूत्रपातात् । 2-ब. रचिते । 3-ब. योगे गुण दर्शयत स्वमेषु ।
4-.अ. सम्यक् व्यतिदीव्यतः किम् ।

श्रृङ्गार एवास्ति रसेषु सार—
स्तत्र स्त्रियस्तास्वपि सुन्दरीयम् ।
अस्यां मुखं तत्र च नेत्रपद्मे
भावास्तयोस्तेषु पुनः कटाक्षः ॥१९॥

सा कर्णकूपौ प्रियवाक्सुधाभिः
पूर्णौ विधायाभरणारघट्टौ ।
दधे कपोलस्थलयोर्निषेक्तुं
प्रेमाङ्कुरान् किं पुलकान्मृगाक्षी ॥२०॥

अर्धेन सौन्दर्यगुणेन विश्व—
मर्द्धेन धाता वदनं विधातुम् ।
अस्या व्यधात्तद्वयमानहेतो
स्तुलाद्वयं किं न हि कर्णपाशौ ॥२१॥

पुष्पेस्तुमस्तत्तिलपुष्पमस्या
यन्नासिकारूपमुपेत्य नित्यम् ।
मुक्ताफलार्हं सुमनोगुणज्ञं
[1]सुगन्धवर्गस्य च भोगपात्रम् ॥२२॥

सुधासमुद्रे तुहिनांशुबिम्बे
रसातले वेति कथा वृथा सा ।
संजीवनार्थं मदनस्य मन्ये
बिम्बाधरेऽस्याः वसतीति सत्यम् ॥१३॥

अहो विचित्रा गतिरस्ति धातुः
शुक्तिः श्रुता मौक्तिकजन्मभूमिः ।
आपक्वबिम्बाधरशुक्तिमध्ये
तस्या रदाली शिखरस्य पङ्क्तिः ॥२४॥

1-ब. सौरभ्यवर्गस्य ।

पीनोन्नतौ द्वौ कठिनौ स्तनौ मा—
मस्याः किमुत्तम्भयितुं यतेते ।
[1]बिम्बाधराधश्चिबुकेन मन्ये
मत्वेति भीत्या समकोचि किञ्चित् ।।२५।।

रागाननेकानयमेक एव
[2]स्थानत्रयेप्यारभते सतानम् ।
रेखात्रयेणेति लिलेख धाता
[3]कण्ठस्थलेऽस्याः किमु कम्बुकण्ठ्याः ।।२६।।

किं दोमृणाले गुणसंग्रहेण
[4]धाता विधातुं मम कण्ठपाशौ ।
सुधां पिपासौ सुतनुर्मुखेन्दो—
र्मंदानने सारसताविरोधात् ।।२७।।

स पद्मयोनिः स्मरजीवनार्थं
व्यधात्सुधां तत्करपद्मयोर्यत् ।
पद्मैकधाम्नोः स्फुरतीह तस्मा—
द्रेखाछलान्निर्जरणप्रणालीम् ।।२८।।

नवप्रवालाङ्कुरकोमलासु
तस्या ध्रुवं पाणिपदाङ्गुलीषु ।
स्मराशुगैः पूर्णविधोः कलाभि—
र्व्यंधान्नखान्विंशतिमब्जयोनिः ।।२९।।

वक्षौ कुचौ श्रीफलतामवाप्तौ
निधानकुम्भौ मदनस्य किं वा ।
अगाधतत्कान्तिसरित्प्रवाहे
यौ यौवनेभः शिरसा बभार ।।३०।।

1-अ-ब. विबाधराधाश्चिबुकेन । 2-ब. स्थानत्रयेष्वारभते । 3-ब. कण्ठं प्रियायाः किमु कम्बुकण्ठ्याः । 4-ब. व्यधा ।

तुङ्गौ नताङ्ग्या निबिडौ स्तनौ तौ
तारुण्यकामौ सततैकनिष्ठौ ।
कण्ठे सुरागं च वसन्तमास्ये
चन्द्रं च वीक्ष्याभिमुखौ[1] किमास्ताम् ।।३१।।

अस्याः स्फुरद्यौवनकामयोः किं
तुङ्गौ स्तनौ मंदिरहेमकुम्भौ ।
यदग्रभागे खलु जाग्रतीयं
[2]निरीक्ष्यते हारलतापताका ।।३२।।

अस्यास्तनीयानपि मध्यदेशो
वलित्रयेणार्जितसन्ततश्रीः ।
किमिन्द्रनीलद्युतिजातवर्ण—
रोमावलिकामजयप्रशस्तिः ।।३३।।

पीनस्तनप्रौढनितम्बमध्ये
मध्येन हा ! हारितमात्मनः स्वम् ।
यद्विग्रहे क्षीणतरस्य तस्य
व्यधायि बंधो वलिभिस्तरुण्याः ।।३४।।

श्रोणीस्थलेऽस्याः पुलिने विशाले
लावण्यसिन्धोर्मदनः सतृष्णः ।
भ्रमंस्तमूर्ध्वं नतनाभिकूपे
मन्ये रसास्वादमवाप कामम् ।।३५।।

अहो महीयान्स्मरयौवनेभ-
द्वयस्य वासो किमयं नितम्बः[3] ।
अस्या वरोरुद्वयमद्वितीयं
करद्वयं तत्पदपुष्करं यत् ।।३६।।

1–अ. वीक्ष्याभिरवौ किमास्ताम् । 2–ब. द्विधेक्षते । 3–अ. नितम्बबिम्बः ।

सुमेरुजातास्वपि ये सुवर्णो
  [1]रम्भासु जंघे सुतनावभूताम् ।
अधः शिरस्तीव्रमकारि ताभ्यां
  तपो महत्सूर्यजलानिलैः किम् ।।३७।।

स्यात्सव्यसाचीत्ययमस्य वेधा[2]
  जङ्घे निषङ्गौ विदधे किमस्याः ।
इतो यतो मुञ्चति मय्यनन्ता—
  न्यञ्चापि बाणान्स च पञ्चबाणः ।।३८।।

श्रीपद्मवासेति जगत्प्रसिद्धिः
  सास्याः कृतार्था पदपद्मयोर्यत् ।
पातप्रसादेन ययोरशोकः
  शोकं जहातीति तु हंसकोक्तिः ।।३९।।

गजस्य जित्वा रदहस्तकुम्भ—
  श्रियः कपोलोरुकुचद्वयेषु ।
व्यधाद्वधूस्तस्य गतिं हरन्ती
  हरत्यसौ हंस गतिं ममापि ।।४०।।

पतति सहसा यस्मिन्नङ्गे दृगैणदृशो मम
क्वचिदपि ततः प्रत्यायातुं न हि प्रभवेत्पुनः ।
अथ च चपला गन्तुं साङ्गान्तरे तु यदीहते
रुचिचयवलद्वीचीपूरे तरत्यपि साहसात् ।।४१।।

मुखमनुपमं नेत्रे चित्रे श्रुतिस्थितिशालिनि
मधुरमधरं बाहू चारू कुचावुचिताकृती ।[3]
सहजसुरभीण्यङ्गान्यस्याः स्पृशन्नलिनीवना—
दलिरयमहो कं वा तस्या गुणं न ममादिशत् ।।४२।।[4]

1-ब. रम्भास्विहेरू । 2-अ. वेध्म । 3-अ. वुचितार्विति । 4-ब. समादिशत् ।

कनकजयिनी कान्तिर्नीला[1] कचास्तरले दृशो
शिखररुचिरा[2] दन्ता: कान्ताप्रवाललताधर: ।
नखततिरियं हीरश्रेणी सुरत्नमयी स्वयं
किमुत सुतनौ शोभाविक्यं करिष्यति भूषणम् ।।४६।।

भवति विमला गङ्गा सेयं कराम्बुजशालिनी
वदनकमलावासा सास्यां: [3]रमा च सरस्वती ।
चिकुरनिकर: कालिन्द्या: स प्रवाह: इहामित:
समुचितमिदं [4]साकं [5]वेणीत्रयी मम कामदा ।।४४।।

इत· स्मेरस्मेरं भृकुटिकुटिलं वाननमित:
स्फुरद्दामक्षामं वलितमुदरं संवृतिरित: ।
इतोऽपाङ्गश्रेणीविवलनमितो विभ्रमवती
स्वयं चित्ते धत्ते मम सुतनुरेखाभ्रमभरम् ।।४५।।

स्मारा नाराचधारा: समदतरमन: कुम्भिन: शृङ्खलाली—
रन्तर्भावप्रशस्तीर्ललितनुलता[6] मञ्जरी: प्रेमकुञ्ची: ।
तारुण्यश्रीपताका विकसितवदनाम्भोजलोलालिमाला:[7]
बाला [8]लीलालसाङ्गे कलयति हृदये ता: कटाक्षच्छटा न: ।।४६।।

इति [9]कथयतस्तस्योपान्तनिकुञ्जगतस्य सा
निजकरधृते [10]चित्रे पश्यन्त्यगाल्लिखितं प्रियम् ।[11]
पुलकिततनु: सभ्रूक्षेपं मुखस्फुरिताधरं
किमपि नमयन्त्येवं वक्तुं शनैरुपचक्रमे ।।४७।।

प्रेयन्नयं न हि नय:[12] स्वगुणैर्नियम्य
स्वाधीनजीवितमुदासितुमीशिषे यत् ।
त्वं भानुमानिव[13] विधुं जनभेनमङ्ग[14]—
दर्शात्यये सपदि जीवयितुं यतस्व ।।४८।।

1-अ. कान्तिकचा: । 2-अ. शिखरजयिनो । 3-ब. रसाल सरस्वती । 4-ब. साकिम् । 5-बं. वेणी समा; अ वेणीत्रयाम् । 6-अ. तरलताम् । 7-अ. भोजलीलालिमाला । 8-ब. लसाङ्गे । 9-ब. विमृशत: । 10-अ. पत्रे । 11-ब. पश्यन्त्यजाल्लिरिवतम् । 12-. अ. प्रेमान्नयन्नहिवयं । 13-. ब. भानुमानुत विधुम् । 14-अ. जनमेनसङ्ग ।

वाचः सुधारसमुचः स निशम्य तस्या—
स्तां चित्रतत्परदृशं च समीक्ष्य लीनः ।
[1]सोढुं निमेषमपि नावसरो ममायं[2]
मत्वेति धीरललितं प्रकटं जगाद ।।४९।।

कल्याणि ! जीवितमिदं भवती मदीयं
साधारणे प्रणय एष क्रियान्विशेषः !
स्नेहाधिके सुदश एव यतः प्रदीपे
धन्या शिखैव कुरुते तमसि प्रकाशम् ।।५०।।

तीर्थेऽत्र ते सखि ! मनोरथसिद्धिरास्ते
सोक्ता निनाय[3] खलु मामिह चित्रलेखा ।
तत्साम्प्रतं फलितमित्यमृतायमानां
श्रुत्वा गिरं प्रियतमस्य तयेत्यचिन्ति ।।५१।।

आन्दोलितापि पवनेन विधूदयोक्ता
वेलां विलङ्घयतु सा तरलार्णवोर्मिः ।
कामाकुलापि तदवेक्षणलालसापि
स्वाभाविकीं न विजहौ कुलजा तु लज्जाम् ।।५२।।

सन्ध्यारुणाभ्रनवपल्लवकुञ्जमध्यात्
प्रादुर्भवन्तमनुरागिणमाप्तहर्षा ।[4]
सम्पूर्णचन्द्रमनिरुद्धमुषा चकोरी
प्राप्ता न तृप्तिमनिमेषदृशा पिबन्ती ।।५३।।

आनन्दजन्मदिनमद्य तपःसुरद्रु—
रद्याफलच्च वसुधाद्यसुधात्मिकानौ ।
तौ रागसागरमहोर्मिषु राजहंसा—
वन्योन्यसङ्गमवशादिति चान्वमंस्ताम्[5] ।।५४।।

1-अ. कुञ्जात् । 2-ब. वियोगम् । 3. अ. सोक्तानि नाम ब सोक्तानि नाथ ।
4-अ-ब. आप्तहर्षं । 5-अ. चान्वचिन्त्यम् ।

[1]स्मितनयननिपातचित्तवृत्तीः
सुतनुरुपायनतां प्रिये दधाना ।
स्मितमपि दयिताप्रतिप्रसादम्[2]
प्रणयवशादुपलभ्य बह्वमंस्त ।।५५।।

पूर्णं प्रेमरसेन मानससरो नेत्रप्रणालैस्तयोः
सुस्मेराननकाञ्चनाम्बुजपरा मोदं समुल्लासयन् ।
लीलोल्लासतरङ्गसङ्गसुभगाकाराङ्गपालीद्वयन्
भिन्दन् ह्रीविसिनीनवाङ्कुरमसौ हंसो मुदागाहत ।।५६।।

[3]इति हि कलयन् [4]कान्तामन्तःस्मरद्वारकातरां
किमपि वदति [5]व्रीडानम्रां स यावदुपागतः ।
किमिति चिरयत्येषा भीरुः ससंभ्रममित्यमूं
सपदि सकलोप्यालीलोकः स तावदुपागमत् ।।५७।।

रविकरपरितापशङ्किनीभिः
गृहमनुवेलमथेरिता सखीभिः ।
रसजलकलिताच्छगल्लपाली
कथमपि सा निरगात्तदक्षिमार्गात् ।।५८।।

आकर्ण्य [6]कर्णमधुरं वचनं व्रजन्त्याः
पादाम्बुजद्वितयचक्रमणक्रमेण ।
द्वारप्रवेशसमये कृपया प्रवृत्तं
सिंहावलोकनमलक्ष्यत पक्ष्मलाक्ष्याः[7] ।।५९।।

[8]तमिह विरहज्वालालोलं लतावलयस्थितं
नयनपथगं सैका चक्रे सखीष्वपि[9] नाद्भुतम् ।
श्रुतिषु महितं गंभीरार्थं गुरुप्रणयोज्ज्वला
[10]कलयति गिरां संपन्नो वा यतः प्रतिभापरा ।।६०।।

1-अ. स्मितमथन । 2-अ. प्रसादप्रणय । ब. दयितात् । 3-अ. इति कलयन् । 4-ब. स्मरज्वरकातराम् । 5-अ. व्रीडालोलांस । 6-अ. कृष्णमधुरम् । 7-अ-ब. पक्षलाक्ष्याः । 8-अ. यदिह । 9-ब. सखीष्विति । 10-कलयति·······वा अ-प्रथेऽनुपलब्धम् ।

अयमपि सरसतरङ्गशीतं
स्फटिकशिलातलमध्यमध्युवास ।[1]
वरतनुविरहेन्धनेद्धमङ्गं —
मंदनहुताशनमुद्वहन्न मह्यम् ।।६१।।

श्रीकाश्यां शिवदश्रियां कविमधि श्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूर्यं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीघनदेश्वरेण कविना[3] सर्गोऽभवत्सप्तमः ।।६२।।

इति श्री कामनन्दनाभिघाने महाकाव्ये उषानिरुद्धसंदर्शनो नाम सप्तमः सर्ग ।

—o—

1-अ. शिलातलभवमध्युवास । ब. शिलातलमध्युववास । 2-ब. सखिम् ।
3-ब. कृतिना ।

अष्टमः सर्गः

तत्र तत् द्वितयदर्शनोत्सव[1]—
प्रेक्षणादिव मृदुत्वमीयिवान् ।
संध्यया प्रकटरागया करै—
रंशुमानभिललाष संगमम् ॥१॥

संकुचत्सरसिजैरयोगिभिः
पीयमान इव चक्रनामभिः ।
हृद्य योगिवनितान्तराहितो[2]
मन्दतामगमदातपस्तपः[3] ॥२॥

चक्रयोर्निशि वियोगकारणं
पद्मयोनिरिति लोकजल्पितैः ।
पद्मवृन्दमथ संचुकोच किं
लज्जते हि जनकः सुतागसि ॥३॥

अस्तमेनमिनमानयन्नयं
कां विधिर्विधुरतां नवाचरत् ।
यं विनैकमखिलं जगत्तम—
स्तोममग्नमतिविघ्नमीक्षते ॥४॥

पद्मिनीं रविवियोगविक्लवां
वीक्ष्य चक्रमिथुनं विरक्तिमत् ।
सञ्चिकाय जलवीचिधारया
खड्गधारमिव दुष्करं तपः ॥५॥

मोचिता सरसिजच्छवीच्छया
वक्रता [4]सुकुसुमे मुनिद्रुमे ।
संकुचत् सुजलजेषु यच्छदै—
स्तत्र [5]संकुचितमोचिती तु सा ॥६॥

1-अ. दर्शनोत्सुक । 2-अ. वनिताभिराहितो । 3-अ. मगतामगमदास्तपस्ततः ।
4-अ. सुमनसां । 5- अ. संकुचि ¨ तुसा ।

नीलिमा दिव इवापतत् क्षितौ
  [1]चूर्णितोंजनगिरिश्चलन्निव ।
[2]लोकदृष्टिमरुणत्तमोभरो
  भूरि धूम इव कामदावजः ।।७।।

हेमबिम्बमिव [3]तप्तभासुरं
  भास्करं निकषितं पराचले ।
सागराय यददान्निशा ततः
  क्रीतमुद्धरति चन्द्रमण्डलम् ।।८।।

कामकार्मुकमिवाभवत्पुरा
  किं रतेरथ ललाटपट्टिका ।
पूर्वदिग्मुखमिवांबरांतरा
  रोचमानमनु चन्द्रमण्डलम् ।।९।।

तल्पमुज्झितवती[4] विराजते
  रात्रिरिन्दुवदनेन्दुभूषणा ।
कैरवभ्रमरमञ्जुगुञ्जितै—
  र्मेखलामणिरुतं वितन्वती ।।१०।।

[5]फुल्लमल्लिकमिव क्वचिद्वनं—
  क्वापि सिन्धुरिव फेनिलोऽभवत् ।
व्योमजातमुदितेन्दुमण्डलं
  यामुनं जलमिव स्फुटाम्बुजम् ।।११।।

अङ्कुमाप परिभूतपद्मिनो
  जातपातकमिवेन्दुमण्डलम् ।[6]
पद्मिनीषु पतिदैवतौचिती
  किञ्च तेन निरणायि काचन ।।१२।।

1-अ. वर्णितो जनगिरिश्चलन्निव । 2-अ. 'लोकदृष्टिरुण' इत्यप्राप्तम् ।
3-अ. 'तप्तभासुरं भास्करं' इत्यप्राप्तम् । 4-अ. तल्पमुज्झितवतीव राजते ।
5-अ. 'फुल्ल' इत्यनुपलब्धम् । 6-ब. मुखेन्दुमण्डलम् ।

[1]अंसितान्धतमसांशुकामुडु—
स्वेदबिन्दुभरसात्विकोदयाम् ।
नीलनीरजदृशं प्रसादयन्
[2]श्लिष्यतीव रजनीं निशापतिः ॥१३॥

तारकाछिदुरहारमौक्तिकां
श्लिष्यता शशभृता निशां भृशम् ।
तत्तमोमृगमदाङ्गलेपना—
लोपचिह्नमिव चिह्नमाददे ॥१४॥

पुष्पभार इव भूरुहैः स्फुरन्
निर्झरः प्रसृमरो गिराविव ।
सान्द्रलेपद्रवचान्दनः क्षिता—
वैन्दवो विरुरुचे करोत्करः ॥१५॥

सन्ध्यया गिरिजयेन्दुमीश्वरं
स्वाश्रयीकृतमवेक्ष्य रक्तया ।
जह्नुजेव विततांशुचन्द्रिका
किं नु विष्णुपदसेवनं व्यधात् ॥१६॥

[3]विप्रकटमजिनं निशाकरः
शङ्करः स्फुरितचन्द्रिकाछलात् ।
गङ्गया[4] धवलयन्नभोजटा
व्योमकेश इति सार्थकोऽभवत् ॥१०॥

अक्षयामृतभृतेन यन्निशा
चन्द्रहेमकलशेन सिञ्चति[5] ।
[6]भानुतप्तमिति विश्वमुच्चकैः
शीकराः किमु ततो न तारकाः ॥१८॥

1-अ. अंसितां सिततमोंशुका । 2-अ. श्लिष्यति स्म । 3-अ. विभृकटं जिनं । 4-अ. धवल······ सुकेश इति सार्थकोऽभवत् । 5-अ. (हे)मकलशेन सिञ्चतीत्य-प्राप्तम् । 6-अ. तप्तमिति ।

विप्रराजविहिते करामृतै—
मंन्मथस्य जयिनोऽभिषेचने ।
फुल्लकैरवकुलेऽलिराजयः
सर्वतो जगुरनङ्गमङ्गलम् ।।१९।।

शीतले शशिनि सत्यशीतले
कैरवेषु विहितेऽलिकैरवे ।
[1]मानमुज्झितवतीत्यमानमुक्
कामतापहृदयेन कामता ।।२०।।

[2]व्यालिकस्य मदनस्य कुण्डली
कुण्डलीकृततनुः शशी[3] सितः ।
लक्ष्यलक्ष्मगरलो वियोगिनी—
तापनः किमु न कोपमूर्छनः ।।२१।।

पञ्चबाण इति[4] सव्यसाचितां
किं दधौ सममुषानिरुद्धयोः ।
सन्दधद्विधिकरोत्कराकृतीन्
हा ! हलाहलसहोदरान्शरान् ।।२२।।

सा स्मरज्वरभरा सखीजनै—
रातपक्लमविशङ्किभिः[5] कृताम् ।
शीतलामसहताथ न क्रियां
हैमनीमिव सरोजनीं स्त्रुतिम् ।।२३।।

चन्द्रचन्दनविलेपनद्रवः
शोषमापयदुषा हृदि क्षणात् ।
पीतमुष्णमिदमालिलोचनै—
र्वारिवान्तरिव हन्त ! गण्डयोः ।।२४।

1-अ. मानमुज्झितवतीत्यमानमुत् । ब. मानमुज्झितवतीत्यमानमुक्तामता ।
2–अ. आहिकस्य व्यालिकस्य । 3–अ. राशीमितः । 4–ब. इह ।
5–अ. विशं किं च कृतम् ।

हारतापिनि हृदि क्षणार्पितं
    पद्मिनीदलमशुष्यदालिभिः ।
अन्तराशयशयः प्रियोऽपि मा
    तप्यतामिति ससर्ज सास्तु किम् ॥२५॥

वीजितापि कदलीदलानिलैः
    शीतलैः श्वसितमुष्णमेव सा ।
तत्प्रवृद्धविरहानलस्य किं
    ज्वालजालमसृजत्कृशोदरी ॥२६॥

तल्पमुत्पलदलैः प्रकल्पितं
    तत्तनोर्न रतये किमद्भुतम् ।
निर्दयं मनसिजेन सा यतः
    कौसुमैरपि शरैरदूयत ॥२७॥

सोऽपि कोपमिव मूर्तमुद्गतं
    मान्मथं रजनिनाथमण्डलाम् ।
लक्षयन्नशरणः स्वरक्षणं
    नैक्षत प्रियतमा रतिं विना ॥२८॥

सोऽब्रवीदिति च निद्रया पुरा
    भामिनी हृदयगामिनी यथा ।
दर्शिताद्य मम चित्रलेखया
    तापनाय विधुरं तथा कृताम् ॥२९॥

ईषदावलित कण्ठकन्दलं
    किञ्चिदञ्चितकपोलकुण्डलम् ।
मामधि व्यधितमारमार्गणं
    सेयमायतकटाक्षवीक्षणम् ॥३०॥

[1]नानिलोयमवलोचनागतो
 नेन्दुरेष तपनोऽतिदुःसहः ।
न प्रसूनमशनिः स्मरायुधं
 नो रतिप्रियतमोऽयमन्तकः ।।३१।।

नालिरेति न च याति यामिनी
 कामिनीनयनयोर्न गोचरः ।
निद्रयापि न कथं च नागतं
 राम ! राम! मदनोतिनिर्दयः ।।३२।।

इत्थमेष कृतजल्पकल्पनं
 कान्तयाकलितचेतनस्ततः ।
दुस्सहस्मरदशावशो दिश—
 श्चक्रवाक इन नक्तमैक्षत ।।३३।।

आगतं द्रुतमुपासितो मया
 दम्पती घटयितुं तदाज्ञया ।
स्वप्रभावविदिताखिलार्थया
 सप्रसादमिह चित्रलेखया ।।३४।।

ध्यानलीनमनिरुद्धमेव सा
 पञ्चबाणपरिपीडिता मुखम् ।
आनिनाय रहसि क्षणाद्दिन
 म्लानमिन्दुमिव चन्द्रिकां निशा[2] ।।३५।।

वाचमर्थमपि योजयन्त्युभौ
 चेतनेव तमसो हृतौ सखी ।
पुष्पवन्तजयिनी वियोगिनौ
 तौ खगौ निशि नियोज्य साऽभवत् ।।३६।।

1–ब. नानिलोष्टामनलोचनागतो । 2–अ. चन्द्रिकांशा ।

सा त्रपातरललोचनाम्बुजा
स प्रियो भ्रमरविभ्रमेक्षण:[1] ।
वीक्षणे तदुभयो: परस्परं
वञ्चनाप्रणयपेशलाऽभवत् ।।३७।।

जीवितं पुनरुपागतं निजं
मन्यते स्म समुपेतचेतन: ।
वीक्षणैरमितभावभूषणै—
स्तां पपौ निजनिमेषकातरै: ।।३८।।

कान्तकान्तमुखवीक्षणक्षणे
हर्षबाष्पसलिलं ववर्ष यत् ।
[2]सिञ्चति स्म [3]सुतनोर्कुचद्वयं
प्रेमकन्दमिव बाहुकन्दली[4] ।।३९।।

श्यामलाथ शबलाथवोज्ज्वला
दृष्टिरस्तु कविसृष्टिषु क्वचित् ।
गोत्वमत्र सफलं तंनिश्चितं
कामधुक् प्रियसमागमेऽस्ति यत् ।।४०।।

दर्शने यदि ममौ तयोर्महान्
प्रेमसिन्धुरतिपूरवान् हृदि ।
सागरं स्वचुलुकेन कुम्भत:
[5]पीतवान्मुनिरिदं किमद्भुतम् ।।४१।।

संगतावनुगुणौ तु दम्पती
वीक्ष्य किं नु करवै मुदा त्वहम् ।
इत्यचिन्ति हृदि चित्रलेखया
स्वां कृतिं न गणयन्ति साधव: ।।४२।।

1–.ब विभ्रमेक्षण च । 2–ब. सुन्दरी तदसि च कुचद्वयम् । 3–ग्र. सुतनुकुचद्वयम् ।
4–ग्र. कन्दली । 5–ग्र. पीतवानिति मुनि: किमद्भुतम् ।

तौ मिथः समयजेन दम्पती
संविधाय विधिना सुसङ्गतौ ।
आलिरुत्तमगुणाकरं वरं[1]
प्रेमगद्गद्गिराब्रवीदिदम् ॥४३॥

भद्रमुद्रितकथा दिवः प्रथा
भोगवत्यपि न भोगवत्यसौ ।
भूरभूद् गुरुरयेन संगता
संगतेन भवता न यायतः ॥४४॥

उक्तमेति पुनरुक्ततामतः[2]
सुज्ञ ! विज्ञपनमत्र[3] ते पुरा ।
इत्यवैति हि तथापि सुन्दरः
स्नेहकातरतरः सखीजनः ॥४५॥

किं वच्मि यदि नाम कोपना
स्वैर्गुणैरनुपमापि[4] मानिनी ।
सांत्वनेन सुभग ! प्रसन्नता—
मिन्दुनेव रजनी समेष्यति ॥४६॥

ह्रि:करावृतनिजाञ्चलामुखीं
मा न मुञ्च मृदुवादिनीमिति ।
सस्मितं तु परिरभ्य सा वद—
न्नामुना स्वमथ मां स्मरिष्यसि ॥४७॥

नन्दनं भुवि युवां यथा[5] चिरं
भोगभुक्तिभिरुमामहेश्वरौ ।
पार्वतीमनुगता तु वामहं
गन्तुमुत्सुकमना निषेवितुम् ॥४८॥

1-अ. वचम् । 2-अ. ब. पुदनरुक्ततामदः । 3-मेऽत्र । 4-अ. मानिना ।
5-ब. चिरं यथा ।

इत्थमित्थमियमौचितीत्यपि
स्थानगा मुहुरलङ्कृती स्पृशन् ।
कामकेलिरसिकः स कामिनीं
संक्षुकामकलया व्यभावयत् ।।५५।।

तत्कपोलफलके स्वकं मुखं
बिम्बितं सपुलके विलोकयन् ।
तिर्यगञ्चितदृगञ्चलां वच—
स्तामुवाच दयितोऽथ सस्मिताम् ।।५६।।

पश्य चन्द्रमुखि ! चन्द्रमत्र ते
नेत्रपङ्कजयुगं सुधां[1] भजेत् ।
त्वद्दृशाजितसलज्जतन्मृगे
निर्गते गलितलाञ्छनोऽस्तु सः ।।५७।।

मुञ्च[2] कञ्चुकमुषेऽस्तु चंद्रिका —
चन्द्रचन्दनरुचिस्तवोरसि ।
वीक्षतेऽथ[3] कुचचक्रसङ्गमं
सङ्गमोऽस्तु निशि चक्रयोरपि ।।५८।।

तोषयन्त्यपि दृशौ सुदर्शने
दर्शनेन न गिरा कुतः श्रुता ।
स्वोपजीविषु[4] कृपावतां सता—
मौचिती भवति नैकवञ्चने[5] ।।५९।।

वाक्सुधां श्रुतिपुटद्वयेन सा
संन्निपीय दयिताय निर्ममे[6] ।
तत्पथेन निजभावभावकं[7]
तिर्यगञ्चितकटाक्षमक्षरम् ।।६०।।

1-ब. सुधा । 2-अ. कुञ्चुकमुखे । 3-अ. वीक्षतेऽद्य । 4-अ. कृता सतां यया । 5-अ. नैकवञ्चना । 6-ब. निर्मना । 7-अ. भावुकं ।

प्रेयसीमृदुकरग्रहोत्सवं
सोऽनुभूय मुकुलीकृतेक्षणः
भावमान्तरमिवोद्गरन्गिरा
तां कृतौपकृतिमूचिवानिति ।।४९।।

यन्मयं जगदिदं ममाभवत्
सेयमस्ति जगतः फलं दृशोः ।
बीजमेति तरुतां तरौ पुनः
तत्तदेव फलतामुपागतम् ।।५०।।

अन्तरं यदपि जीवदेहयोः
मन्महे तदपि नेह तद्भिदाम् ।
त्वत्सखीं विदुषि संगतामिमां
निश्चिनोमि निजजीवितं यतः ।।५१।।

कोपनापि मम जीवगोपना
मारमार्गणगरार्तिमोचना ।
नैन्दवीकिमदवीयसी कला
शङ्करस्य कुटिलापि शङ्करी ।।५२।।

उक्तवन्तमिति तं च तां सखी
सावहेलमनुपृष्ठलम्बिनीं ।
अस्य हि त्वमसि ते गतिस्त्वियं
सत्यमिष्टमपि चेति साब्रवीत् ।।५३।।

इत्थमर्थमनयोः प्रसाध्य सा
प्रेम वीक्ष्य च गिरेङ्गितेन च
स्नेहकातरदृशा तयेक्षिता
निर्ययौ गिरिसुतामुपासितुम् ।।५४।।

कामिना निजभुजान्तरीकृता
वेपमानतनुराकुलेक्षणा ।
कातराभिनवपल्लवाधरं
चुम्बने समधुनोद्वधूर्मुखम् ॥६१॥

[1]काममार्गणनिपातनिःस्वनं
कामिमानसविमोहनममुम् ।
मानसं चरणदोलिकाक्वणं
हुङ्कृतं कृतवती वधूर्बभौ ॥६२॥

तां मुहुः स परिरभ्य कातरां
मुक्तवानपि [2]विचक्षणः क्षणम् ।
चञ्चरीक इव चूतमञ्जरीं
सान्त्वयन्मृदुगिरा चुचुम्ब च ॥६३॥

मुञ्च प्रेयसि ! कञ्चुकं निगदिता तेनेति तेने शिरः
कम्पन्तत्परिमोचने[3] [4]प्रियतमेत्युक्त्वाकरावग्रहात्[5] ।
बालास्मिन्चललोचने पुलकिते प्रेमत्रपाम्भोनिधौ
मज्जन्ती परिरभ्य गाढममुना स्मेरानना चुम्बिता ॥६४॥

आश्लेषे दयितः सतन्मयतया नात्मानमामन्यत
प्रेयस्यप्यहमेष वा रतिरिति स्वल्पं न साबुध्यत ।
मन्ये किं तु रतिस्मरौ निरुपमप्रेमाब्धिलब्धं रसं
स्वादं स्वादमविन्दतां निजजनैरानन्दरूपं फलम् ॥६५॥

अङ्गं रङ्गानि तन्व्याः कलयनिजभुजापाशमासज्य[6] कण्ठे
भित्वा वक्षोजकुम्भौ तरुणिमकरिणा पाणिजेनांशुकेन ।
आखण्ड्यास्या सरागाधरमथ नयनद्वारदेशप्रकाशे
चेतो[7] दुर्गं स्ववश्यं कुरु वदत इदं हंसकौ सिञ्जितैः किम् ॥६६॥

1-पद्यमिदं बग्रन्थेऽप्राप्तम् । 2-ब. विचक्षणम् । 3-ब. प्रियमोचने । 4-अ. प्रियनने ब प्रियजनो । 5-ब. त्यक्ता करावग्रही । 6-अ. पाशमासाद्य । 7-अ. दुर्गमस्ववश्यम् ।

भिद्यद्गङ्गातरङ्गा समजनि यमुनैका सहस्रप्रवाहा
वीणा निक्वाणहीना चलशफरयुगं शैवलान्तर्निलीनम्[1] ।
पद्मामोदो मृदाया कनकसरसिजं भूरि हीरानुषक्तं
शम्पाकम्पान्निवृत्तः समजनि किमतस्तद्वयं न प्रतीमः ।।६७।।

प्रियमुखमथ पायं पायमानन्दसान्द्रं
[2]ललितललितमङ्गं गोपयन्ती कराभ्याम् ।
मदनरसरसालं[3] घ्राणलोलोत्पलाक्षी
पुनरपि परिरब्धौ तस्थुषी सा रतान्ते ।।३८।।

चन्द्रे नीलसरोजयोर्मुकुलता नागे कलापावलि—
श्चक्रौ चन्द्रकलाङ्कितौ कवलिता बिम्बेन चांद्री द्युतिः ।
कम्बुः कोकिलकूजितादुपरतश्रान्ते मृणाले लता
[4]हैमी कम्पविवर्जिता विगलिता वेद्यान्तरस्य स्थितिः ।।६९।।

अथ सपदि सुधांशोर्द्वीपमन्यं यियासो—
विरहमसहमानास्तारकाः किं विमम्लुः ।
इति विधुरमधीरा कैरविण्यो निरीक्ष्य
प्रसभमसितभासः किं न्यमीलन्निशान्ते ।।७०।।

अजनिरजनिर्म्लायच्चन्द्राननेव मनस्विनी
विगलितरत्तारा ताम्यत्सु[5] कैरविणी सखी ।
अपि नववधूः प्राची रम्या कुसुम्भनिभाम्बरा
स्फुरदलिदृशा मित्रं दृष्ट्वा हसत्कमलोन्मुखी ।।७१।।

इह हि तरवो गायन्त्युच्चैः शकुन्तशतस्वरैः
प्रणयसुभगौ स्वैरं चक्रौ विलोक्य समागतौ ।
कुसुमनिचयं वल्यो लाजानिवावकिरन्त्यहो
भ्रमरनिकरः पद्मावासे रसं सुखमेधते ।।७२।।

---

12 ब. निलीनाम् । 2-अ. चलितचलित । 3-अ. करालम् ब. विदालम् ।
4-हैमीकम्प अ. ग्रन्थेऽप्राप्तम् । 5-अ. तापत्सु ।

चक्री चक्रः सरसि विसिनीखण्डमाखण्डयन्तुं
भूयो भूयं स्नपननिपुणं वारिणा प्लावयन्तौ ।
नीत्वा भीमां कथमपि निशां संगतावापशान्तिम्[1]
तापं नेतुं चिरविरहजं सिञ्चतोऽन्योन्यमङ्गम् ।।७३।।

भुवनवनविसारि ध्वान्तमातङ्गसंघं
प्रखरकरनखाग्रैरुग्रतेजा विनिध्नन् ।
जगदिव तदसृग्भिः रञ्जयन्रागपूरै—
रुदयगिरितटान्तादुद्ययौ सूर्यसिंहः ।।७४।।

अयमुषसि समीरः स्फारकासारवीची[2]
विलुलितमकरन्दामोदसान्द्रारविन्दः ।
सुखयति सहकारश्रेणीमत्तालिमाला
कलरवकलकण्ठी कण्ठभूकाकलीभिः ।।७५।।

एष प्रोत्फुल्लपङ्केरुहकुहररजः पुञ्जगुञ्जद्द्विरेफः
कूजत्का देववृन्दः सरससहचरीसङ्गनिःशोककोकः ।
सुच्छायाछन्नपालीतरुतलविलसत्पान्थसार्थाभिरम्यः
काम्यः[3] कस्यास्तु कामं न नयनरुचिरः स्फारकासारसारः ।।७६।।

दिनमुपवनलक्ष्मीलोभनीयस्वभावं[4]
प्रणयभरविनेया तन्द्रचन्द्राऽपि रात्रिः ।
पटुपिकपटहोयं कामसाम्राज्यशंसी
सरसकुसुमसम्पल्लम्पटो वाति वातः ।।७७।।

रम्या रामाभिरामा लसति वसुमती पञ्चमैः कोकिलानां
भृङ्गालीगीतभङ्गीसरससरसिजोद्भासि लीलासरांसि ।
खेदछेदी समीरः स्फुरति नवलता पीतपुष्पासवश्रीः
श्रीमांस्तारासु चन्द्रः किरति किल करापूरकर्पूरचूर्णम् ।।७८।।

1-ग्र. सगतंरापशान्तिम् । 2-ग्र. वाचा । 3-ग्र. काम्पास्ककामम् । 4-ग्र. स्वभाव ।

श्रीमत्काश्यपवंशजः समधिकश्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीघनदेश्वरेण कविना सर्गो जनिष्टाष्टमः ॥७९॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये संयोगवर्णनो नाम
अष्टमः सर्गः ।

—०—

नवमः सर्गः

प्रातः प्रियोपात्तरसा प्रसन्ना
प्रियः परानन्दभरालसाङ्गः ।
संस्मृत्य[1] किंचित्सुखमन्वभूतां
परस्परालोकनकौतुकानाम् ॥१॥

रदच्छदं कान्तरदाङ्कितं स्वं
पिधाय लीलाकमलेन बाला ।
[2]स्ववक्त्ररागाङ्कितकान्तनेत्रा—
वलोकनोत्थं स्मितमप्यधात्सा ॥२॥

नेत्राञ्जनांकाधरमायताक्षी
तांबूलरागाङ्कितलोचनांसः ।
मिथो निपीय स्मितकारणानाम्[3]
न जग्मतुः पारमपारहर्षौ ॥३॥

विलोकयन्ती मुकुरे मुखं सा
निजे कपोले प्रतिबिम्बितस्य ।
वीक्ष्य प्रियस्याधरमञ्जनाङ्कं
सम्मार्ज्य सम्मार्ज्य वधूर्ललज्ज ॥४॥

आदर्शबिम्बे च वधूकपोले
तयोर्निजास्यं पिबतोस्तदानीम् ।
स्वनेत्ररागाधरकज्जलानां
सम्मार्जने कश्चिदभूद्विनोदः ॥५॥

सरागपीनस्तनहारचिह्नं
ह्रिया प्रिया तस्य निरीक्ष्य वक्षः ।
स तां च तच्चापि विनाङ्गसङ्गं
मिथः परीरम्भणमन्वभूताम्[4] ॥६॥

1-प्र. भूय । 2-प्र. स्वक्तरागाङ्कित । 3-प्र. कातराणाम् । 4-प्र. परीरम्भमिवान्वभूतम् ।

कुचाञ्चलादञ्चितलोचनभ्रू—
नखाङ्कलग्नां वलमुन्नगह्य[1] ।
[2]कराञ्चलेनास्य दृगञ्चले सा[3]
चक्रे चकोरौ स्वमुखेन्दुबिम्बे ॥७१॥

रतश्रमक्लान्तनिजाङ्गभङ्गे[4]
किञ्चिद् विकाशास्य सरोजकान्तिः ।
आमोदलोलभ्रमराप्तविघ्ना[5]
प्रियोपहासैस्त्रपते स्म भीरुः ॥८॥

मुग्धे ! मुधामानपरिग्रहे स्यात्
किमाग्रहेणेह फलं वधूनां ।
उक्त्वेति तां भालमलक्तरक्तं[6]
पश्यन्नसौ स्वं मुकुरे जहास ॥९॥

तां भावयित्वा सुतनुं विलासी
प्रसन्न आसीदिति केलिलोलम् ।
[7]वधूर्वनश्रीरिव तस्य सङ्गा—
न्मधोर्विशेषश्रियमाससाद ॥१०॥

आहूयमानः[8] किल कोकिलानां
कलानुलापैर्भ्रमरारवैश्च ।
तया विलासालसया सहासैः[9]
क्रीडावने क्रीडनमाचचार ॥११॥

तौ तत्र पुष्पावचयाय कुञ्जं
विचेरतुः कौतुकसक्तचित्तौ ।
शरत्प्रसन्नाविव रोहिणीन्दू
तारागणे व्योम्नि विजृम्भमाणौ ॥१२॥

1-अ. चलमुन्नभव्या । 2-अ. कराञ्चलो । 3-अ. स्या । 4-अ. निजाङ्गने ।
5-अ. विद्या । 6-अ. काङ्कम् । 7-अ. नवश्री । ८-ब. किमु । 9-ब. सहासौ ।

इदं प्रियेदं वितरेति मह्यं
जग्राह सा साग्रहमस्य पाणेः ।
पुष्पं नवं पुष्पमुचो मुखाब्जा
लोलानलीनाशु निवारयन्ती ॥१३॥

नवप्रवालैः सरसप्रसूनैः
स्फुरद्द्विरेफैर्नयनाभिरामम् ।
आराममालोक्य विलासलोलां
बालां स सानन्दमिदं जगाद ॥१४॥

अयि प्रिये पश्य रसालकुञ्जे
मञ्जुस्वरं कूजति कोकिलेयम् ।
चन्द्रानने पञ्चमजित्वराणि
साभ्यस्यतीव त्वदुदीरितानि[1] ॥१५॥

[2]सङ्गाल्लतानां गतिभङ्गमाप्तः
पाण्डुच्छविः पुष्पपरागपूरैः ।
सस्वेदबिन्दुर्मकरन्दयोगात्
[3]कामीव सीमन्तिनि ! वाति वातः ॥१६॥

ईषन्नखोल्लेखकृताङ्गहर्षं
करेण तस्याः करमादधानः ।
संदर्शयंस्तत्तदथाभिरामा
रामे सरामो रमणोऽभिरेमे ॥१७॥

[4]मा कापि कुञ्जे सरघापिते[5] भो
यायान्निवार्येति सखीर्निजास्तौ ।
वीथीद्वये पुष्पलतावितान[6]
[7]संकेतके चेदनुरस्तशङ्कम् ॥१८॥

1-ब. दुदीरितानि . 2-अ. सङ्गल्लतानां । 3-अ. स सात्विकः सुन्दरि ! वाति वातः । 4-ब. नः । 5-ब. सरघः कुलोभायान्ननान्निवार्येति । 6-ब. पिधाने । 7-ब. संकेतको चरतुर (?) स्तशङ्कम् ।

छन्नं पुराहं तमहं पुरा तां
यामीति तत्र त्वरितो[1] वनान्ते[2] ।
समं मिथो दर्शनमापतुस्तौ
सहस्रतालं परिरम्भणञ्च ॥१९॥

चन्द्रो मुखं नेत्रयुगं द्युरत्नं
सुधाधरः कामनवी तु वाणी ।
तस्याः प्रियास्ये मदिरां धयन्त्याः
श्रीकल्पवल्ल्या भवतीति युक्तम् ॥२०॥

उन्मीलिताघूर्णितवक्रनेत्र—
मस्पष्टमिष्टालसवाग्विलासम् ।
रागीन्दुवक्त्रं मदिराविकारात्
विकारि तस्या मदनोपकारि[3] ॥२१॥

कुञ्जान्तरे सैकतवेदिकायां
ससंस्तरे पल्लवनिर्मिते ताम् ।
मृणालसूत्रैः करकल्पिताभिः[4]
प्रसूनमालाभिरलंचकार ॥२२॥

प्रवालपुष्पाभरणैर्निकुञ्जैः
पद्माकरस्यापि तरङ्गवातैः ।
पिकालिगीतैरुभयोर्वनेऽभूत्—
स्वभावसिद्धोपकृती रतीशः ॥२३॥

कृत्वा प्रसूनैः रशनां नितम्बे
हारं गले गुम्फमसौ कवर्याम् ।
आकर्ण्यर्णनेत्रोत्पलभूषितेऽस्याः
श्रुतिद्वयेनाकृतकर्णपूरम् ॥२४॥

1-अ. सोत्कौ गमनं । 2-अ. वनान्त्ये । 3-20-21 संख्याकं पद्यद्वयं बग्रन्थे नोपलभ्यते । 4-ब. करकल्पनाभिः ।

नेत्रे च्युतं पुष्पपरागमस्याः
श्वासानिलैः [1]स्वैर्स्वैरसा निरस्य ।
पुनः पुनश्चुम्बनजाततृष्णः
प्रियो विसश्राम तदाचरन्न ।।२५।।

पतङ्गिका वंशकलागुणान्ताः
सुसंविधानाः शिखिपिच्छचूलाः ।
सोऽदर्शयत्तां मधुरं स्वनन्ती
शैलूषकन्या इव खे नटन्ती ।।२६।।

जीवानपेक्षं वियतः पतन्तं
पारावतं पश्य सखे प्रियार्थम् ।
सोऽस्या निशम्येति वचः सभावं
प्रिये सपक्षः[2] सपद्येवमूचे ।।२७।।

आन्दोलयामास स दोलया तां
गङ्गां मुहुः सिन्धुरिवोर्मिबाहुः ।
प्रेमोज्ज्वलापांगतरङ्गभङ्गा—
मागामिनीं गाढमथालिलिङ्ग ।।२८।।

विहृत्य चेतो हरकेलिशैले
सनिर्झरोद्गारदरीमुखे तौ ।
प्रत्यग्रपुष्पान्तपरागभागै—
र्वातैः श्रमं निन्यतुराशु शान्तिम् ।।२९।।

[3]तौ पद्मिनीनां भ्रमराक्षिपातै—
स्तरङ्गहस्तैरपि दीर्घिकायाः ।
हंसस्वरैश्चक्रयुगप्रचारै—
[4]जलावगाहाय कृतौ समुत्कौ ।।३०।।

1-अ. स्वैस्ततलानिरस्य । 2-अ. सयदेवमूचे । 3-अ. तस्य निनीनाम् ।
4-'वगाहाय कृतौ' अग्रन्थेऽनुपलब्धम् ।

सख्येव तां मेखलयानुवेल—
मुदीरितां वारिविहारहेतोः[1] ।
सोपानमार्गेण सरो विशन्तीं
प्रियः प्रियां वाचमिमामुवाच ॥३१॥

मुग्धे ! सरः पश्य तरङ्गहस्तै—
स्त्वाविशंत्या भजतेऽनु पादौ ।
वीक्ष्येति हंसः स्फुटहंसकोक्ति—
र्हतां गतिं प्रार्थयतीव भीतः ॥३२॥

विश्रम्य विश्रम्य तरङ्गभङ्गे
मत्तोऽरविन्दे मकरन्दपानैः ।
सरःसमीरः सरसः प्रियेऽयं
सोपानपङ्क्तौ निपतन्निवैति ॥३३॥

कुचश्रियं चक्रयुगं गतिं ते
हंसा सरोजानि मुखेन्दुलक्ष्मीः ।
दृशोर्विलासं शफराश्च कान्ते
हृत्वाश्रयन्कि जलदुर्गमेते ॥३४॥

आधूय वारिप्लुतपक्षती सा
हंसी प्रियं सिञ्चति मञ्जुघोषा ।
मृणालनालार्पणकैतवात्तां
[2]चञ्च्वा प्रियां चुम्बति पश्य हंसः ॥३५॥

आलोकयालोकय सुभ्रु ! चक्रीं
चक्रेण च क्रीडनमाचरन्तीम्
स्वच्छे समीक्ष्यांभसि या स्वबिम्बं
मत्वा सपत्नीति निहन्ति चञ्च्वा ॥३६॥

1-अ. विहारकृतीः । 2-ब. चञ्च्वां ।

अम्भोजमम्भोजविशालनेत्रे
मा मा स्पृशेदं मधुपोऽधिशेते ।
प्रिये सखो जागरितः सरोषा—
[1]त्तवाधरं सुन्दरि । दङ्क्ष्यतीति ॥३७॥

स सिच्यमान प्रियया कराभ्यां
गाधादगाधं जलमाविवेश ।
श्रान्तां पुनस्तत्र नितम्बभारा—
दालिङ्गदालिङ्गनलोलचित्ताम् ॥३८॥

अन्योन्यकण्ठाकलितैकबाहू
निरूप्य लक्ष्मीं गृहदीर्घिकायाम् ।[2]
क्षणं विलंघ्य प्रतिबिम्बशोभा—
लोभाद्गभीरांभसि तेरतुस्तौ ॥३९॥

कान्तेन सार्द्धं[3] सरसो विहृत्य
स्वाभाविकश्रीर्बहिरीयुषी सा ।
अर्थेन वाणीव कवेर्मनस्तो
[4]विशुद्धवर्णा सुतरां विरेजे ॥४०॥

[5]स्नानागतायाश्चिकुरोत्करोभूत्
धाराधरो मेचककान्तिरस्या ।
कुचांचलाग्राज्जलबिन्दुवर्षः
प्रेयोमनश्चातकहर्षहेतुः ॥४१॥

तप्त्वा तपोदावजधूमपानै—[6]
र्यैश्चामरैस्तच्चिकुरैरभावि ।
रतेषु [7]किं कान्तकरग्रहार्थं
तान्याद्रियन्ते गुरुधूपधूमे[8] ॥४२॥

1-अ. त्तदाधर । 2-अ. दीर्घिकायाः क्षणं विलम्ब्य । 3-अ. सार्द्धं । 4-अ. ग्रन्थेयं पङ्क्तिरनुपलब्धा । 5-अ. गतायाः । 6-अ. धूम''''यैं । 7-अ. किः । 8-अ. धूमे ।

कुचद्वये चारु स चित्रलेखां
विधाय पङ्केरुहकुड्मलाभे ।
न साध्विति स्पर्शनलोलपाणिः
सम्मार्ज्य सम्मार्ज्य पुनश्चकार ॥४३॥

तस्या दृशोः कुण्डलयोः कपोलौ
कान्त्या नखानां स्वकरस्य दृष्ट्वा ।
चित्रौ[1] तनौ चित्रयितुं क्षमोभूत्
स्मेराननालोकनलोलनेत्रः ॥४४॥

पूर्णोऽपि कोऽहं बत निष्कलङ्के
तदाननेन्दाविति नीलकान्तिः ।
प्रियार्थितो दृष्टिनिवारणार्थं
रामामुखे कज्जलबिन्दुरिन्दुः ॥४५॥

तुम्बीकुचद्वन्द्वरुचं कराभ्यां
वीणां प्रवीणो [2]रमणीमिव स्वाम् ।
बभार कण्ठे नखराग्रपातै—
रुदीरयन्तीं स्वगुणानुरागम् ॥४६॥

द्वयोस्तयोर्वादयतोः प्रवीणे
वीणे यथैकश्रुतिरागताने ।
आस्तां न किं तन्मनसी निलीने[3]
मिथस्तथैकश्रुतिरागताने ॥४७॥

अक्षाः सपक्षा दयितेतवेति
व्याहृत्य दक्षः समृषा विलक्षः ।
ममर्द तान् द्यूतजितः कराभ्यां
हृतेतयाक्रम्य पणोत्तरीये ॥४८॥

पणं गृहाणानृण एष भावी
  द्यूते रतं हारितमित्युदीर्य ।
काञ्च्यां गृहीत्वा निगृहीतपाणि—
  श्चुचुम्ब वामां रमणो रिरंसुः ।।४९।।

मिते स्मिते कोपकलाकलापः
  सविभ्रमभ्रूविभवो[1]ऽपि हर्षे ।
सहुङ्कृतिः प्रीतिविधौ निषेधो
  वरं विकारोऽपि रसात्प्रियेस्याः ।।५०।।

आक्रान्तकान्तादयदत्तदंशैः
  रदच्छदेनार्हसि खण्डनाय ।
त्यज त्यजेत्पक्षरलक्षिताथ
  रक्ताधरेऽजायत सागृहीते ।।५१।।

रतोत्सुकं कान्तमवेक्ष्यमाणा
  दृशा स्मरस्मेरमुखी सखीनाम् ।
आसन्नमार्गात्कंरसङ्गभङ्ग[2]
  यान्ती [3]परावतस्य हृदि प्रविष्टा ।।५२।।

शुकीं शुकं सा स च शिक्षयित्वा
  रागानुबन्धं विविधप्रबन्धम् ।[4]
कृतेऽनुवादे[5] सरसो तु ताभ्यां
  मानापराधां सुरसा जहीताम् ।।५३।।

[6]सख्या मुखे नाथ मृषाप्रसङ्गा
  दाकारितं कान्तमवेक्ष्यमाणा ।
संभाषमाणा प्रणयेन रामा
  कृतार्थयत्स्वं च पतिं च तां च ।।५४।।

1-अ. भ्रूविभकोऽपि । 2-अ. त्वरसंगमम् । 3-अ. पराग । 4-अ. विहित ।
5-अ. सरसं तु ताभ्याम् । 6-अ. तस्या ।

ससाध्वसं तां कृतपूर्वमाना—
मपूर्वशीलां निभृतं स गत्वा ।
किं वा करोमीति समाकुलोभू—
दिच्छानुरूपं प्रियसेवनं हि ।।५५।।

सा चंद्रशालाशयने शयाना
ज्योत्स्नासु मन्दं प्रियगोत्रगानम् ।
गायन्त्यवापास्य कराम्बुजाभ्यां
निमीलिताक्षी हठचुम्बनानि ।।५६।।

[1]गृह्णामि वेणी फणिनं करेण
[2]स्मरेण तप्तं स्तनगोलकं वा ।
करोमि बिम्बाधरकोशपानं
दिव्यत्रयं भाविनि ! भावयामि ।।५७।।

सा पृष्ठदेशान्नमिताननेन्दुः
स चानतास्यो रसभावलोलौ ।
परस्परेणाधरपल्लवस्य
समं सुधास्वादमवापतुस्तौ ।।५८।।

पर्यङ्कपीठान्निशि चन्द्रिकाया—
मायान्तमालोक्य पतिं मृगाक्षी ।
अर्द्धोत्थिता किञ्चिदुदीरयन्ती
पुनः शयाना किमुना च वक्ष्ये ।।५९।।

केयं सुधाहो मधुरेऽधरे स्या—
दस्या वयस्येन निपीयमाना ।
हासं रसो नेति न तृप्तिमेति
प्रियः प्रिया नोद्विजते सरागा ।।६०।।

1-अ. गृह्णामीत्यप्राप्तम् । 2-ब. स्मरोपतप्तम् ।

रते हृदोऽस्या गुणिनश्च्युतिर्मे
    ह्रीणेस्ततः [1]किमनु निम्ननाभेः
हारो रतान्ते भृगुपातहेतोः
    पयोधरं भूरुहमारुरोह[2] ॥६१॥

संभाषणैः क्वापि सुदर्शनीयैः
    सुक्रीडनीयैर्विविधोपचारैः ।
[3]अरीरमत्तां रमण स तत्र
    [4]तत्रापि तैस्तैः समयानुसारम् ॥६२॥

इति विविधविहारैः प्रेमभावानुबन्धं
[5]मधुतपजलदर्तून्कान्तया सोऽनिरुद्धः ।
क्षणमिव गमयित्वा स्वेच्छया [6]कामतन्त्रा—
मृतजलनिधिपूरे पारपान्थो बभूव ॥६३॥

श्रीकाश्यां शिवदश्रियां समधिकश्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूर्यं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण नवमः सर्गोऽजनिष्टोत्तमः ॥६४॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये नानाविहारो नाम नवमः सर्गः ।

—०—

1-ब. किं ननु निम्ननाभेः । 2-ब. भूधर मारुरोह । 3-अ. 'अरी' त्यप्राप्तम् ।
4-ब. तच्चापि । 5-पङ्क्तिरियं अग्रन्थेऽनुपलब्धा । 6-अ. कामतप्त ।

दशमः सर्गः

अथ विदितनिशान्तवृत्तदृप्तो
रणरसशौण्डसहस्रबाहुदण्डः ।
सपदि समुपगम्य वीरवृन्दै—
स्तमवददेवमुषासखं स बाणः ।।१।।

क इह मम गृहे परैरधृष्ये
विगतभयः शलभायते हुताशे ।
मम [1]करवशगो दिशां बलिर्वा
भवतु क्रुधीः शतधा विभज्य दत्ता ।।२।।

तदुदितमवधार्य मा स्म भैषीः[2]
प्रणयवतीति निगद्य तां स धीरः ।
स्मितपुलकमुखो मुदानिरुद्धः
सुधनुरधिज्यमथाकरोद्रणोत्करः ।।३।।

यदि भवति घटा मदोत्कटानां
गिरितटपाटनलम्पटा द्विपानाम् ।
उपचितनवकेसरस्तथापि
प्रथयति पौरुषमेष सिंहशावः ।।४।।

अवददिति स तं विकत्थनेयं[3]
त्रपयति बाणमहौजसां निधानम् ।
तिमिरपटलपाटनप्रचण्ड—[4]
स्तरणिरुदेति यतः स्वतः प्रकाशः ।।५।।

इति निगदति कोपनः स तस्मिन्
बलितनयोतिबलिर्ववर्ष बाणैः ।
[5]वियदभिरचयत्यहोल्कं
समभिफणीन्द्रनिलैर्दलत्फलैस्तैः ।।६।।

1-ब. करवश रस । 2-अ. मास्यभापैः । 3-ब. विकन्थनेयम् । 4-ब. पाटलप्रचण्ड़ ।
5-अ. विपदभिरचयत्यतहोल्कं स फणिफणीन्द्रनिभोज्ज्वलचुलैस्तैः ।।६।।

सपदि सह भयेन स प्रियायाः
 परशरजालमथाच्छिनत्क्षुरप्रैः ।
अपि विरचितमात्मनोऽभिमानं
 दशशतबाहुरमंस्त खण्डितं सः ॥७॥

मुखमरुचदपुष्यलक्षणीयं[1]
 स्वधनुषि कुण्डलिते तदान्तराले ।
तुलयदुदयदिन्दुबिम्बमुच्चैः
 कृतपरिवेषविशेषवेषशोभम् ॥८॥

हरिरिव निचखान तस्य शत्रो—
 र्हृदि विशिखान्सनखान् दशासुरस्य ।
प्रतिभुजमपि चैकमेकमस्त्रं
 सजवमथाक्षिपदक्षतः परास्त्रैः ॥९॥

निशितशरनिकृत्तशत्रुशीर्षे
 र्नवकमलैरिव रक्तचन्दनाक्तैः ।
शिरसि स हि रणस्य भैरवस्य
 कृतयजनं किल हुङ्कृतोक्तिमन्त्रैः ॥१०॥

सति धनुषि न जीयतेऽयमन्यै—
 रिति धनुरस्य समच्छिनत्स बाणः[2] ।
पुरपरिघमथाददे स लौहं
 प्रधनविधावतिधीरधीरधन्वा ॥११॥

भ्रमणरयवशेन चक्ररूपं
 परिघमयं खलु विभ्रतं दधानः[3] ।
घन इव पवनभ्रमिः[4] समुद्रात्
 सलिलमिवारिबलं बलाज्जहार ॥१२॥

1-अ. रमुख्रलक्षणीयम् । 2-अ. निरस्यति स्म बाणः । 3-ब. वधानः । 4-ब. समरुध्मि ।

अथ परिघमनर्गलं गलाध—
स्थलमधितस्य रिपोरपातयत्सः ।
सुररिपुरपि तस्य बन्धनायाक्षि—
पदहिपाशमवारणीयमन्यैः ॥१३॥

अहितनिहितगाढमूर्छनं तं
समुपचचार परिच्छदः सुरारिम् ।
स चरति तनयो विमुक्तपाश—
स्त्वरितमुषां निजबाहुपाशबद्धाम् ॥१४॥

अकलितमहिमा महार्णवोऽसौ
[1]शमयितुमेक किमीशते किमौर्वम् ।
न दशशतभुजः शशाक जेतुं
तमरिमहो हि महोस्ति वैष्णवम्[2] ॥१५॥

तदनु यदुपतेरुदन्तमेतं
सकलमवेत्य मुनीन्द्रनारदोक्तम् ।
गरुडगतिवशादुपागतस्य
ध्वनिरुदभूद्दिवि पाञ्चजन्यजन्यः ॥१६॥

नवजलदरुचिः स शार्ङ्गधन्वा
स्फुरिततडित्प्रभकौस्तुभप्रभाङ्कः ।
गरुडगुरुगरुत्मरुद्भिरुच्चैः
द्रुतमथ बाणपुरं मुरारिरागात् ॥१७॥

चरणनखमणिप्रभैव गङ्गा
तपनसुता तरलेन्द्रनीलकान्तिः ।
वदनविघृतपाञ्चजन्यहंसा—
श्रयरसिकास्य सरस्वती विरेजे ॥१८॥

1-अ. शमयितुमेकमीशति किमौर्वम् ।
2-अ-ब. वैष्णवं तत् ।

पूरं पूरं रोदसी रोधसी द्वे[1]
क्षुब्धाम्भोधेर्वारिभिः प्लावयित्वा ।
अन्वायाते तस्य सैन्ये स्वनैः स्वैः
दुं दुं दुं दुं दुंदुभिश्चोन्ननाद ॥१६॥

क्षोणीक्षुण्णा वाजिराजीखुराग्रै—
र्नागैर्धूता कर्णतालानिलैः स्वैः ।
सैन्ये [2]सर्पत्यस्य यायात्कदाचित्[3]
[4]दानाम्भोभिः सिच्यमाना न तैः स्यात् ॥२०॥

पत्त्यश्चेभस्पन्दनोद्भूतधूली—
पूरे मग्ने शेषभूतप्रचारे ।
स्फारे विश्वव्यापिघोरान्धकारे
जाता चित्रं पार्थिवी सृष्टिरेका ॥२१॥

जाग्रन्नेको रेणुपूरे सुपर्णा—
रूढः प्रौढश्रीसदृश्यो बभूव ।
न्यग्रोधाग्रैः कैटभारिः पुरेव
क्रीडत्कल्पोद्रिक्तपाथोधिमध्ये ॥२२॥

हेमाब्जे किं [5]चञ्चरीकः सुवर्णा—
लङ्कारे किं भासुरं नीलरत्नम् ।
मेरौ जम्बूभूरुहः किं[6] कृपाढ्यः
कृष्णस्तस्मिन्वैनतेये विरेजे ॥२३॥

मत्वा पूर्वं शङ्खनादेन देवं
सैन्यं भूयो भूमिकम्पेन भूम्ना ।
वाते विष्वक् तार्क्ष्यपक्षोत्थवाते
क्रुद्धो बाणः प्राययौ सज्जसैन्यः ॥२४॥

1-ग्र. द्वक्षु । 2-ब. सर्थत्वस्य । 3-ग्र-ब. क्वचित् । 4-ग्र. दानाम्भो सिच्यमाना ।
5-ग्र. चम्पकः । 6-ब. फलाद्य ।

कृष्णं बाणो वीक्ष्य दैत्यान्तकं तं
दैत्यः शौर्योल्लेखपट्टं विदित्वा ।
शस्त्रं दध्रे सन्मुखीभूय तस्मिन्
स्वस्यान्येषां वा विशेषं दिदृक्षुः ॥२५॥

श्रुत्वा जन्यं पाञ्चजन्यध्वनिं तत्
सैन्यं शत्रोर्न्यस्तशस्त्रं विचेष्टम् ।
साक्षात्प्रेक्ष्याधोक्षजं मुक्तमायं
ध्याने लीनं योगिवृन्दं यथासीत् ॥२६॥

मन्दं मन्दं चेतनामेत्य चक्रुः
नृत्तं युध्दोद्योगिनो[1] बाणवीराः ।
[2]प्राप्तां दृष्ट्वा मुक्तिकन्यां वरीतुं
सेनां शौरेरुद्गृहीतासिमालाम् ॥२७॥

द्वन्द्वैर्युद्धं प्रागभूद्यादवानां
दैत्यैस्तैस्तैः सिद्धकौतूहलाय ।
संवर्तादावुद्धतैः स्वैस्तरङ्गैः
प्राचः सिन्धो[3] पश्चिमाम्भोधिनेव ॥२८॥

व्यूहौ शस्त्रव्रातसम्पातकृत्तै—
र्वर्षत्तौ तौ[4] वीक्षितौ वीरशीर्षैः ।
कल्पेऽनल्पैर्गण्डशैलैर्पतद्भिः
किं प्राक्प्रत्यग्वातधूतौ महाद्री ॥२९॥

मुण्डं यन्तुः[5] प्रकटमसिना खण्डखण्डं विधातुं
खड्गाग्रेण स्फुरितमहसा बाहुदण्डोद्यतेन ।
धावन्वीरः प्रतिभटहठच्छिन्नकण्ठोत्तराले
भूमावेकं न्यधितचरणं दन्तिदन्तोऽद्वितीयम् ॥३०॥

1-ब. वारवीराः । 2-ब. प्राप्तम् । 3-अ. प्रत्यक् । 4-अ. तावित्यप्राप्तम् ।
5-अ. यन्तुः इतः परमिदं पद्यं बग्रन्थेऽनुपलब्धम् ।

मुण्डं मुण्डं खण्डितं वीरखङ्गैः[1]
खण्डं खण्ड[2] खण्डयत्याधिनृत्तम् ।
योगिन्यो [3]ताऽन्योन्यहस्तात्तालैः
क्रीडं क्रीडं चक्रुरट्टाट्टहासम् ॥३१॥

सद्यः[4] शस्त्राघातपातोद्गृहीतैः
हुं हुङ्कारान्तर्महावीरशीर्षैः ।
दध्रे गृध्रैर्गृध्नुभिः शङ्खनादः
खे खेलद्भिश्चाप्सरो मङ्गलाय ॥३२॥

वेतण्डेनोद्दण्डशुण्डाबलेन
क्षिप्तो व्योम्नश्चापतंश्चण्डखङ्गः ।
यत्रास्याः कान्तस्य शीर्षं चकर्त
छिन्नोऽन्येन द्यां विमानेन यातः[5] ॥३३॥

[6]चमूरजो धूसरकान्तिरस्त्रं
रजस्वलेनाभवदुत्सृजन्ती ।
[7]भूवीरगर्भा सुषवे पुनर्द्यौ—
स्तान्ववि्रे चाप्सरसोऽपि सद्यः ॥३४॥

यो यादवानां समरे समूहः
स्यात्कृष्णवर्त्मेव कृपाणधूमः ।
[8]तेनार्तिमाप्ताः प्रतिपक्षवृक्षाः
ज्वालां दधुर्यद्रुधिरस्य धाराम् ॥३५॥

कृत्तं शिरः स्वं युधि रक्तरक्तं
विधाय कश्चित्करयोः कवन्धम्[9] ।
बभ्राम विभ्रन्निजभानुभेद—
प्रतीतये गोलमिवाग्नितप्तम् ॥३६॥

1-अ. खङ्गौ । 2. खण्डयत्याधिनृत्तं वग्रन्थेऽनुपलब्धम् । 3-ब.योगिन्यो-ऽत्ता । 4-शस्त्राघातपातादि—ब. ग्रन्थेऽनुपलब्धम् 5-ब. पद्यमिदमनुपलब्धम् । 6-अ. चमूरसा । 7-अ. भूरत्नगर्भा । 8-अ. तेनाप्ति । 9-ब. कबन्ध ।

छिन्नाग्रदोष्णा निशिताग्रभाजा[1]
भिदन्रिपूणामुदरं हतोऽन्यः ।
तेषामरीणां रसनाग्रनीवी—
विश्रंसने पाणिरमानि धन्यम्[2] ॥३७॥

भल्लेन भिन्ने हृदये रिपोर्यः
प्रहस्य तस्यापि हृदा विभेद ।
चक्रेऽप्सरो वक्षसि कोपि पत्र—
लेखां सुरेखां हरिचन्दनेन ॥३८॥

शीर्षे मिथः पाणिगृहीतकेशे
स्वकण्ठयोः सन्दधतुर्निकृत्य ।
कौचित् प्रवीरौ तु पुनर्युयुत्सू
दृष्ट्वाप्सरो विभ्रममुज्झितासू ॥३९॥

दन्तद्वये दत्तपदप्रवीरौ
[3]यन्तुर्प्रहर्ता निहतो द्विपेन ।
प्रापाप्सरः पाणिसरोरुहाभ्यां
सपादसंवाहनकौतुकानि ॥४०॥

[4]अन्त्राग्रमेकस्य निगृह्य गृध्रो
ययो शिवा चान्यमितश्चकर्ष ।
वीरस्य यस्यैष सुराङ्गनाभ्यां
सम्भावितश्चामरवीजनेन ॥४१॥

बलेन कृष्णस्य बलेन बाणो
भग्नं बलं स्वं सहसा समीक्ष्य ।
रामस्य युद्धेष्विव कार्तवीर्यो
दधे[5] धनुः पञ्चशतीं शरांश्च ॥४२॥

1-अ. निशिताय । 2-ब. धन्यः । 3-ब. यन्तुर्निहन्ता । 4-ब. अंशाग्रकस्य ।
5-अग्रन्थे नास्ति ।

ववर्ष बाणैरसुरः पुरस्त्री—
नेत्रव्रजैः साश्रुभिरीक्ष्यमाणः ।
गिराविवास्मिश्चतुरङ्गसैन्ये
धराधरो भूरिभिरम्बुवर्षैः ॥४३॥

रामः स रामोऽपि सहस्रबाहुं
हत्त्वा दशास्यं च रणान्न तृप्तः ।
बाणस्य बाणैरतितृप्तिमाप्तः[1]
कृष्णो भुजांश्छेत्तुमियेष नासून् ॥४४॥

उदग्रबाहुव्रजराजमानं
तमापतन्तं रिपुमुद्यतास्त्रम् ।
प्रयत्नसाध्यं रणसीम्नि मत्त्वा
चक्रं दधे चक्रधरः सरोषः ॥४५॥

चक्रस्य भानोरपि मण्डले द्वे
श्रीमत्यनन्ते कुतुकं व्यधाताम् ।
चञ्चद्रणश्री श्रुतिकुण्डले वा
विलोचने वा किमु कालरात्रेः ॥४६॥

चक्रधरस्य करात्लघुचक्रं
वज्रधरस्य पतत्किमु वज्रम् ।
छिन्ददरोचत वैरिभुजौघं[2]
क्ष्माधरपक्षसहस्रसदृशम् ॥४७॥

चक्रनिकृत्तमुदस्रमजस्रं[3]
बाहुसहस्रममुष्य निधाय ।
तत्र ददर्श हरी रणसिन्धौ
सिन्धुसहस्रसभागमशोभाम् ॥४८॥

1-अ. रणतृप्तिमाप्त । 2-अ. भुजौघक्ष्माधर । 3-अ. मजस्रबाहु ।

दैत्यपतिर्ददृशे रणभूमे—
गर्भ इव प्रचलच्छविहस्तः ।
ज्ञानमिवाफलमष्टममासे
केवलमेव वहन् हृदि शौर्यम् ॥४९॥

संगरसुप्तपतीनधिजग्मुः
शोकवशाद्विवशाः पुरनार्यः ।
जातदयः श्रुतवानथ तासां
वाचमिमां कृपणां हरिरार्यः ॥५०॥

हा ! प्रिय ! जातु भवानधिशेते
मामपहाय नयत्सुखशय्याम् ।
सम्प्रति किं धरणीमतिरक्तां
त्वं परिरभ्य [1]चिरं स्वपिषीह ॥५१॥

मानवतीमनुनीय विलासिन् !
मा त्वमहो मधुरोक्तिररंसी ।
अप्सरसां वशगो विलपन्त्यै
न प्रतिवाचमपीह ददासि ॥५२॥

यावदियं [2]समुपैम्यहमाशु
त्वां दिवि कान्त ! वरीतुमुपेता ।
तावदलं चटुला सुरवामा—
स्तोषय तोषकरात्मवचोभिः ॥५३॥

हरिरिति वचनानि तासां निशम्य[3] क्षणं ध्यातवान्
किमपि करुणया सलीलो हि तत्र प्रभाभासुरः ।
रभसजितरिपोरमुष्यात्मौलौ सुरैर्कल्पिता
सुरतरुकुसुमौघवृष्टिः पपातामृतैराप्लुता ॥५४॥

1–अ. सुखम् । 2–ब. समुपैम्य ह मा श्रुत्वां । 3-ब. क्षणंध त्तत्राक्तिमपि करुणा सलीलो हि तत्र प्रभाभासुर ।

काश्यां कश्यपवंशभूसमधिकः श्रीरुच्छरङ्गः[1] पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापराङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदेश्वरेण दशमः सर्गोऽथ पूर्णोजनि ॥५५॥

इति श्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये श्रीकृष्णस्य समागमे यादवासुरयुद्धे बाणासुरबाहुच्छेदो नाम [दशमः सर्गः] ।

—०—

1-ब. वच्छरङ्ग ।

एकादशः सर्गः

एवं कृष्णेन बाणोऽसौ ससैन्यो विकलीकृतः
पूर्वदत्तवरं देवं सस्मार[1] हरमातुरः ॥१॥

रजस्वान्जगतः सर्गे सत्ववान्परिपालने
तमस्वानसि संहारे त्रयीमय ! नमोस्तु ते ॥२॥

कालकूटाकुलाशेषविश्वत्राणपरायणम् ।
स्मरामि परमीशानं नीलकण्ठमुमापतिम् ॥३॥

नमस्ते घोरहुङ्कार ! भस्मितस्मरविग्रह !
पुनः संजीवितानङ्ग । पार्वतीपतये नमः ॥४॥

हर्म्येऽहमहसा हर्षं हराहर हराहर ।
हठे हन्नंहसां हंत हरिं हरहरंहसा ॥५॥

षोडशदल कमलबन्धगोमूत्रिकाबन्ध एकावलीबन्धाः ।[2]
ततः पशुपतिः सर्वं विदित्वा स्वप्रभावतः ।
आजगाम वृषारूढः सेनान्या सेनया सह ॥६॥

देवानामपि दैत्यानां मध्ये बाणो व्यराजत ।
सात्विकानां तामसानां विकारो राजसो यथा ॥७॥

समयो दैवगत्यैव गुरुता लघुताकरः ।
गिरयो वायुरोधाय प्रलये तेऽपि तैश्चलाः ॥८॥

अहो हरस्यानुचराः वायोरिव रजःकणाः ।
कृष्णमेघमनुप्राप्य पेतुस्तद्बाणवर्षणैः ॥९॥

शिशिरांशुशरीरांशैः श्रीशौरे श्रीशरैररम् ।
शूरारोरुशिरोराशि शशिश्रीशौरिराररौ ॥१०॥ द्व्यक्षरः[3] ।

युयुत्सू ददृशा ते तौ रणं प्रद्युम्नषण्मुखौ ।[4]
महोद्धतसमारम्भौ[5] [6]सरोषाविव दिग्गजौ ॥११॥

शाम्बो बाणस्य पुत्रेण युध्द्यमानो व्यराजत ।
कुण्डलीकृतकोदण्डो[7] वृत्रेणाखण्डलो यथा ॥१२॥

1-ब. तुष्टाव । 2-ब. ग्रन्थे नास्ति । 3-ब. ग्रन्थे नास्ति । 4-ब. रणे षण्मुखौ । 5-अ. महोद्धतस्य बंभौ । 6-अ. सवेपाविव । 7-अ. कोदण्ड ...... तेष्वारवण्डलो यथा ।

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा वीरौ दर्शयन्तौ स्वपौरुषम् ।
सुरासुरचमत्कारं चक्रतुः समरोद्धुरौ ।।१३।।

नाहं प्रद्युम्नबाणानां कदाचिदपि गोचरः ।
माद्य भूयांसमिति किं कुमारः प्राद्रवद्रणात् ।।१४।।

दैत्यानां के चचारारीन् निघ्नन्कौतूहली हली ।
प्रलयोद्वेल्लितावाब्धौं भैरवो भैरवो यथा ।।१५।।

[1]कुंभाण्डकूपकर्णौऽभिसत्वरामो व्यराजत ।
रजस्तमोगुणौ योगे शुद्धः सत्वोदये यथा ।।१६।।

त्रिशिरास्त्रिनेत्रास्यः षड्बाहुर्भस्मभीषणः ।
बलं बलेन जग्राह रौद्रो रौद्रोज्वरोस्त्रिपात् ।।१७।।

[2]स्वेदवेपथुरोमाञ्चस्तम्भोत्वैवर्ण्यभृद्वलः ।
जयश्रीसंगमेत्युक्त्वा स सात्विक इवाभवत् ।।१८।।

स्खलन्पदे [3]गाढतर्षो मंदव्याघूर्णितेक्षणः ।
मधुनेव ज्वरेणार्तः प्रललाप हलायुधः ।।१९।।

ज्वरेण ज्वलताक्रान्तं बलवन्तमिवाग्निना ।
कृष्णो वीक्ष्यान्तराजज्ञे प्रवाह इव यामुनः ।।२०।।

ततः प्रकटयाञ्चक्रे स्वतः शीतज्वरं हरिः ।।
पीताम्बरतडिद्वास[4] आसारमिव वारिदः ।।२१।।

वैष्णवेन ज्वरेणाशु स्मरारातिज्वरो जितः ।
अनन्यशरणीभूय तं तुष्टाव स्वगुप्तये ।।२२।।

प्रमथानथ तान्दृष्ट्वा द्रावितान्शौरिणा रणात् ।
सज्यमाजगवं चक्रे रुद्रश्चक्रधरोन्मुखः ।।२३ ।

[5]उग्रन्तममुपायान्तं दृष्ट्वा हृष्टमना हरिः ।
चण्डकोदण्डटङ्कारैः [6]पूरयामास रोदसी ।।२४।।

1-पद्यमिदं ब. ग्रन्थे नास्ति । 2-पद्यमिदं अ. ग्रन्थे नास्ति । 3-ब. गाढतर्षो
पूर्णितेक्षण । 4-ब. तडिद्दीप्त । 5-ब. उग्रमुग्रम् । 6-अ. रापुप्तरे स रोदसी ।

पिनाकपाणिर्नागास्त्रैर्विषज्वालाविलाननैः ।
प्रसरद्भिश्च गगनं नागलोकमिवाकरोत् ॥२५॥

हरेः पतत्रीनागाशी समुपोषितवच्चिरम् ।
हरोपकल्पितं नागबलिं जग्राह साग्रहम् ॥२६॥

तत्रागमानुमानाभ्यामेकत्वे ब्रह्मणः स्थिते[1] ।
प्रत्यक्षेण[2] तयोर्युद्धे द्वैतापत्तिर्निरूपिता ॥२७॥

ततः क्रुद्धं समायान्तं शार्ङ्गपाणिः[3] पिनाकिनम् ।
अस्तम्भयज्जम्भनेन तं विन्ध्यमिव कुम्भजः ॥२८॥

[4]विवृतास्यं जृम्भमाण शिरो धुन्वन्स धूर्जटिः ।
कर्तुं शशाक नो किञ्चित् पञ्चास्य इव पाशगः ॥२९॥

सविहाय रणामर्षं प्रपञ्चमिव [5]सात्विकः ।
लीलामानुषरूपं तं तुष्टाव हरिमोश्वरः ॥३०॥

जयत्यहो महो दिव्यं लीलायितमहाद्भुतम् ।[6]
[7]निर्विकारं [8]घनछिन्नं तव भानोरिवाच्युता ॥३१॥

अवस्था प्रतिभासन्ते नानारूपा घना इव
त्वय्यनन्ते विलीयन्ते चिदानन्द पुनः पुनः ॥३२॥

सन्तोऽप्यसन्तो लक्ष्यन्ते विकारा जगतस्त्वयि ।
सिन्धाविव तरङ्गाद्याः सष्टिस्थितिलया महत् ॥३३॥

एकेनेकत्वमापन्नः स्वयं स्वस्यैव मायया ।
सृष्टिस्थितिलयैः क्रीडन्नात्माराम त्वमीक्षसे ॥३४॥

त्वमेव बहुधाभूतो भूतेषु विभवाद्यदि ।
विभाव्यसे वद तदा को दोषी कोऽत्र दण्ड्यते[9] ॥३५॥

मया पुत्रीकृतो बाणस्तत्प्राणांस्त्रातुमर्हसि
अपराधेऽपि भूयिष्ठे न सतां चिरमाग्रहः ॥३६॥

1-अ. स्थित । 2-अ. प्रत्यक्षिगातयो । 3-अ. ग्रन्थे नास्ति । 4-'विवृत्तास्यं' पदोत्तरस्यावशिष्टचरणमग्रन्थे नास्ति । 5-ब. तात्विकः । 6 ब लीलापिहितमद्-मुतम् 7–अ-ब. निर्विकारं तव । 8-ब. छिन्नम् । 9-ब. को दोशी दण्ड्यते तदा ।

शमयित्वमिदं शत्रोः प्रसीदति महामना ।
जहाति रागमरुणस्तमस्तोमं विजित्य यत् ॥३७॥

गुरुणाहं कृतिं कृत्यां भवतास्य निरस्यता ।
शान्तिं योजयतां धीर जितस्योपकृतिः कृता ॥३८॥

अयं समरकण्डूतिं दोर्दण्डैर्दुर्वहां वहन्
तच्छान्त्या शान्तिमापन्नः सुखी सम्भाव्यतेऽधुना ॥३९॥

मृगतृष्णाजलप्रायं सुखं विषयसम्भवम् ।
तत्परित्यज्य मेधावी शाश्वतं सुखमश्नुते ॥४०॥

आपातमिष्टान्विषयाननिष्टान्परिणामतः ।
निषेवते जनोन्मत्तो[1] विषाणीव विषाङ्कुरान् ॥४१॥

आत्मानं भ्रामयत्येतदिन्द्रियार्थैर्मनश्चरत् ।
इन्द्रियार्थादुपरतं तदात्मनि निलीयते ॥४२॥

अहं ममेदं संसारबीजं योगिभिरुच्यते ।
नाहं ममेदं न [2]पुनर्बन्धमोक्षकरं परम् ॥४३॥

इति श्रुत्वा हरिः शम्भोर्गिरः प्रणयपेशलाः ।
तथास्तामित्यवादीत्तं [3]विनयानतकन्धरः ॥४४॥

सतारो रजनीप्रान्ते पूर्णचन्द्र इवामलः ।
ईशानः कृष्णमामन्त्र्य सगणः स तिरोदधे ॥४५॥

नष्टावशिष्टाद्विकरः स बाणः शम्भुमन्वगात् ।
सहस्रकरमस्ताद्रिप्रस्थगं तु लयन्नथ ॥४६॥

कुभाण्डेन पुरोगेण हरिर्जयनिवेदिना ।
उषानिरुद्धलोकार्थं बाणमन्दिरमाविशत् ॥४७॥

पलायमानशत्रुस्त्रीचरणालक्तलक्ष्मभिः ।
साञ्जना सुप्रपातैश्च किमीरं मार्गमैक्षत । ४८॥

1-अ. इवोन्मत्तो । 2-अ. न पूर्वं । 3-अ. विनयानन्तकन्धरम् ।

मन्दगानात्मजान्वोढुमशक्तानां पदे पदे[1] ।
पदपंक्तिः रिपुस्त्रीणां शोच्याऽभूत्पांशुले पथि ॥४९॥

त्रस्तारिस्त्रीपतद्गर्भबालमादाय वा नरम् ।
क्रीडन्तं वीक्ष्य सदयः स तं तस्मादमोचयत् ॥५०॥

सोऽनिरुद्धं रणक्षोणीं[2] वीरमस्तिष्कपङ्किलाम् ।
योगिनीभूतवेतालव्याकुलां वीक्ष्य विस्मितः ॥५१॥

प्रद्युम्नशाम्बावालोक्य नारदाग्रे वदन् चलः ।
अनिरुद्धभुजोत्कर्षं कृष्णं स्मेरमुखं व्यधात् ॥५२॥

कृष्णप्रतापदग्धस्य मध्ये किं बाणवेश्मनः ।
ददर्शाऽङ्गारपुञ्जाभो भासुरो रत्नसञ्चयः ॥५३॥

वीरो भुजद्वयीदुर्गदुर्ग्रहं नगरीमिव ।
रक्षसां सोऽनिरुद्धो ददर्श गरुडध्वजम् ॥५४॥

अथानिनाय कुंभाण्डः कृतमङ्गलसंविधाम् ।
अनिरुद्धं पुरस्कृत्य चित्रलेखान्वितामुषाम् ॥५५॥

तौ दृष्ट्वा दम्पती कान्तौ नारदेनाभिनन्दितः ।
परमानन्दसन्दोहसाक्षिणी सोऽक्षिणी व्यधात् ॥५६॥

कृष्णाज्ञया नारदस्य चरणौ तौ प्राणमतुः ।
ततो बलस्य कृष्णस्य ह्रिया प्रद्युम्नसाम्बयोः ॥५७॥

तैर्विकस्वरपद्माक्षाहर्षवाष्पाभिवर्षितैः ।
प्रत्याननन्दु स्वाशीर्भिः शिरस्याघ्राय दम्पती ॥५८॥

कृष्णोऽनिरुद्धमालिङ्ग्य सपार्श्वोपवेशितम्
ऊचे स कुरुकं पश्य दक्षिणो संगगामुषाम् ॥५९॥

इयं जयश्रीरस्माकमनिरुद्धभुजार्जिता ।
बाणवंशोद्भव रत्नं दीपतामेतु नः कुले ॥६०॥

1-ब. पलायते 2-इतः परः एकादशसर्गान्तिमांशः द्वादशसर्गश्च अग्रन्थे नोपलभ्येते ।

अथ सुरतरुपुष्पैः दिव्यगन्धानुबन्ध—
भ्रमदलिभिरुदारैःस्वः सरित्तोयशीतैः ।
सललितजयशब्दं श्रीजगन्नाथमौलौ
सुरगणकृतमुच्चैरर्च्चनं तत्र रेजे ।।६१।।

हरिरिति कृतकृत्यो रम्यमार्गेण प्राज्ञां
प्रणयसरमलुम्पन्ह्लोकपालोपमानाम् ।
रुचितरनिवेशं रैवतं प्रा....
....लां क्षणमिव रजनीं सप्रीतचेता निनाय ।।६२।।

श्रीमत्कश्यवंशजः समधिकः श्रीरुच्छरङ्गः पिता
हीरादेव्यपि भर्तृभक्तिनिरताऽसूत प्रसूयं सुतम् ।
तेन श्रीत्रिपुरापङ्घ्रिकमलद्वन्द्वालिना निर्मिते
काव्ये श्रीधनदे न....मगमत्सर्गोयमेकादशः ।।६३।।

इतिश्रीकामनन्दनाभिधाने महाकाव्ये हरिहरयुद्धे बाणनिग्र—
[ह नाम] एकादशः सर्ग ः

—०—

द्वादशः सर्गः

अथ योगमुषानिरुद्धयो—
रिह पश्यन्ननुरागनिर्भरम् ।
कुतुकान्निशया कलानि—
....रन्तुमिवाचलं ययौ ॥१॥

अप्सुरागमिवान्तरं किर—
ननुदयाद्रेस्तरुणोऽरुणो ।
उदियायतमो महौषधौवि
....जगदुद्वरत्करैः ॥२॥

अरुणेन तमो निरस्यता
यशसे भानुरनीयतोदयम् ।
अवलेपनुषः सुवंशजाः
कृतकृत्या....ण भवन्ति हि ॥३॥

उडुमौलिमणींस्तमोहिमान्
कवलीकृत्य ततांशुपक्षतिः ।
उदडीयत काश्यपीर्गि
....तां जीविता खगेश्वरः ॥४॥

उदयन्न्‍ुदयाद्रिशेखरात्
करुणाजंगमकल्पभूरुहः ।
तपतस्तपनीयकान्ति....
....कारैः पल्लवमूर्तिभिर्बभौ ॥५॥

रविणैकेकचक्रसेवया
निखिलं चक्रकुलं प्रमोदितम् ।
महतश्चरणोपसेवनं
न....भ्युदयाय जायते ॥६॥

हृदयाम्बुरुहाणि मोदयस्व
करग्राहितचक्रशासनः ।
रविरथे हरिश्च रंहसा
युग....पं पि ना समागतौ ।।७।।

स पुरस्कृतदम्पतिः प्रभुः
सह लक्ष्म्या गरुडोपरि स्थितः ।
ददृशे त्रिदशैः फणागणैः
....जेन धृतातपत्रकः ।।८।।

तरणिर्ददृशे सहस्रधा
फणिराजस्य फणामणीगणैः ।
अपि भूषणबिम्बितैर्हं
....टि प्रभतां द्विराहसः ।।९।।

धृतमङ्गलतोरणावलिं
वरमालाकमनीयदोर्ल्लताम् ।
नगरीं दयितामिवात्मनः
....दविरहोत्सुकां प्रभुः ।।१०।।

कनकोज्ज्वलदुर्गशैखरैः—
ददृशे द्वारवती महोदधौ ।
कमलापतिवास....
कृतरागेन्द्रतनुफणैरिव ।।११।।

निबिडोपवनान्तरे पुरं
रुरुचे काञ्चनवप्रमण्डलम् ।
उदयारुणमिन्दु....लयन्
कुण्डलिताभ्रमध्यगाम् ।।१२।।

जगदीश्वरसेवयेव तन्मयता—
मेव जनोधिगच्छति अधिवासतः ।
........मं—
स्तरवस्ततकेरि पारिजातिताम् ॥१३॥

पुरि तत्र निकेशीतजै—
रतनीयः कुतुकं व्यतन्यत ।
कनकाचलकूटिके ....
........णेरंशुमत्तः करैरिव ॥१४॥

सुमुखानि दिशां प्रपूरयत्
यशसाशीतिमरीचिरोचिषा ।
हृदयानि च सम्मदै........
........सवधू वरोविशत् ॥१५॥

अपि मङ्गलदुन्दुभिस्वनैः
पृथिवीं द्यामपि पूरयत्परम् ।
ऋषिदेवनृपैरुदीरितो
........यवानजायत ॥१६॥

प्रकृतिर्जने कर्तुं रम्बुधैः
सा तत्र पुरे मनोहरे ।
खलु समाविहवाहिनीगण—
........परिपूरितेऽपि यत् ॥१७॥

अथ तत्र समागते हरो
हरिदावर्जित भूरि संपदि ।
अभिजग्मुरुषानि
........वलोकोत्सुकिताः पुरी जनाम् ॥१८॥

जनताहमहं पुरा पुरे—
त्युपयान्ती रुरुचेऽतिसम्भ्रमात् ।
अनुरागव................रुतः
कमलानन्दकरी रविप्रभा ।।१९।।

मनसाऽपि दृशा पुरस्त्रिय—
स्तदवेक्षणजातचापलाम् ।
जघ[नगौरव ?] भारमन्थरां
समनिन्दद्गतिमात्मनः पुनः ।।२०।।

कुतुकोत्गतिर्निभज्यतां
तनुमध्यास्तनयोर्भरादि ।
[कटि ?]बद्धनितम्बमेखला,
कथयत्किं मणिकिङ्किणीरवैः ।।२१।।

इह सौधतलेषु सर्वतः
सुदतीनां कु....का गतिः ।
किमिह तवमञ्जुसिञ्जितैः
कलहंसैरिव हंसकैः स्वकैः ।।२२।।

अवतंसरोरुहास्य—
....करवीटिकां भ्रमात् ।
न च तद्विषयं सखी वच
श्चिरमाकर्णयति स्म काचन ।।२३।।

स्वकरार्पित द—
.......स्वां सहचारिणीमिव ।
अभिवीक्ष्य वधूवरेक्षणी
प्रतिवाक्येषु जडामनिन्दयत् ।।२४।।

चरया...........
चयन्ती कुचयोर्यथास्थितम् ।
मणिहाररुचं प्रति स्वकां
करलीलां कलयन्त्यभून्मुहुः ।।२५।।

........क्षकर्दमोक्षित........
.... भूमौ तरलालिमालिका ।
अधिदम्पति वीक्षितुं तदा
सुदृशां नेत्र परम्परा किमु ।।२६।।

प्रथमं नयनोत्पलैरभूत्
सुदृशामप्सरसां स्मि—
... .णि सरोरुहार्जितैः
कुसुमैर्भूरिभिरर्च्चनं हारः ।।२७।।

कृतमङ्गलसंविधैः सुरै—
रधिरुह्यात्र....गनम् ।
मुकुरोपमं बभौ प्रति—
बिम्बैरिव तत्पुरौकसाम् ।।२८।।

अथ दम्पतिदर्शनोत्सुकैः
पुरनारी....
अनिरुद्ध इवातिमन्थरः
प्रतिपेदे निजमंदिरान्तिकम् ।।२९।।

स्वनिवासविसृष्टसैनिको
विशदन्तः पुर....।
........रिमुक्तपयोनिधिः शनै—
रजनीनाथ इवोडुमण्डलम् ।।३०।।

हरिदर्शनहर्षसम्भवं
 जलमज्जां मकरन्द....।
........न हृ निश्चिनोति........तत्कमले
 वीवरतामिवोचिताम् ।।३१।।

हृदयेषु सदर्थणेष्विव
 स्थितिमापैक एव यो ।
........त्यजता समं........ममुः
 सरितापत्युरिवापगा पृथक् ।।३२।।

विरहानलतापिते पुरा
 ....थ थ् (ग्र ?) सिकं धनहर्षवाष्पकैः ।
न जातरूपतां........
 सुमुखीनां हृदयहरो करेव ।।३३।।

प्रकृतिप्रतिमासमाश्रितो
 महिमारष्टपुमान्प्रभा ।
........त्रिदशैर्भजन्नजः........
 ससहस्राण्यनु षोडशा पराः ।।३४।।

परिवृत्य विलोकितैः स्मिते
 सुमुखीनां जयमं....।
हर्षभरालसः शनैः शनैः
 सययावङ्गणकल्पपादपम् ।।३५।।

अपि सन्तु सुरद्रुमाः शतं
 सकलार्थिनय ...।
न वदान्यजनोऽन्यसधनः
 समये सम्भृतसम्पदा व्यये ।।३६।।

अमरद्रुमसम्पदायता........
चतुराणां....।
सुषमा पुरुषोत्तमस्य सा
न हि वृक्षा विरराम पश्यताम् ॥३७॥

गुरुवन्दनतत्परौ नुतौ
तदवेक्षाक्ष....स्त्रियम् ।
द्वितयं हरिणा कृतार्थितं
चिरमङ्के विनिवेश्य दम्पती ॥३८॥

घृततीर्थजलैः कमण्डलोः
श्रुतिपू....सरद्भुजैः ।
अभिषेकविधिं तयोर्व्यधात्
परमानन्दमनाः सनारदः ॥३९॥

त्रस्तरसा स्त्रियः पुरा
...........के वाक्षतैः ।
परितोषवचोभिरेतयोः
कृतनीराजनमंगलवेभुः (?) ॥४०॥

अमरासुरसङ्गराज्जि
........सुरद्रुमञ्जरम् ।
गुरुभाग्यभुवं स्नुषामुषां
समुमन्यत मुदा यदुस्त्रियः ॥४१॥

स्वगृहान्तररत्नदीपि........
........धानभूमिकाम् ।
निजधर्मयशस्करीं सुखां
विपदम्भोधितरी जगुः स्त्रियः ॥४२॥

सुकृतान्ननु—
........जानां च पुनर्गृहस्थता
अपि तत्र सुसन्ततिः स्नुषा
कुलशीलस्थितिधर्म्मभाजनम् ।।४३।।

उ........कलं........
यदुनाथः कलयन्निलंकृतम् ।
विदवे निजदेशमीश्वर—
स्तमुषामण्डलनामधेयकम् ।।४४।।

........म प्रभोः
प्रभया दिव्यमहस्तदाभवत् ।
क्षणमात्र इवास्वभावि तत्
परमानन्दपरायणैर्जनैः ।।४५।।

........प्रीतचेता नितान्तम्
प्रणयत रतियुक्तेस्तोषि तोषानिरुद्धः ।
अनुदिनमभिरामैः प्रेमभावा—
.. ....कृष्णो दम्पती तौ तदास्ताम् ।।४६।।

थावच्चन्द्रकलाललाटफलको गौरीपते राजते
यावद्वक्ष.... शोभां शुभां कौस्तुभः ।
यावन्मूर्धनि दीव्यति क्षितिरिमां शेषस्य यावत्स्थितिं
काव्यं मे लभतां........कण्ठेष्विदम् ।।४७।।

विद्यारण्यमुनिप्रसादसुभगोऽनन्तोस्य चन्द्रः सुत—
स्तस्य श्रीहरिपाल........[रुच्छ] रङ्गोऽभवत् ।
तस्याहं घनदः कवित्वरसिकः श्रीदेवतां चिन्तना—
निर्म्माणं मम कामनन्दनमहा........।।४८।।

वाञ्छावृद्धिकतं (रं) सतां हरिगुणैरत्यर्थमानन्दमं
कामान्मन्दिरसामृतैं सुमनसां काम....।
........सुतोऽनिरुद्ध इति वा प्रद्युम्ननामात्मजः
श्रीकृष्णस्य तु कामनन्दनमिति व्यक्तः निरुक्त्या (मया?)।।४९।।

पङ्क्राजस्य रसपूर्णा सरस्वती ।
सतां हृदि क्षीरसिन्धो यासु पीयूषवाहिनी ।।५०।।

[कामनन्दना] भिधाने महाकाव्ये श्रीद्वारवतीपुरीप्रवेशो नाम द्वादशः सर्गः । सपूर्णम् । श्रीगणेशाय नमः । श्रीकेशवाय नमः । श्रीरामचन्द्राय नमः । श्रीदुर्गादेव्यै नमः । शुभं भवतु ।

—•—

परिशिष्टमाद्यम्

(कामाभिनन्दनसूक्तिसुधा)

1. किमिव न हि विभाव्यं कर्मणां प्राक्तनानाम् । 3/38

2. विधिरभिमतमर्थं साधयिष्यत्यवश्यम् । 3/49

3. न महता क्रियते ह्यवधीरणा । 4/4

4. शौर्यं हि शूरेषु न कातरेषु । 4/20

5. समय एव गुणागुणकारणम् । 4/27

6. सतां समृद्धिः सुहृदां मुदे हि । 4/36

7. सिद्धीनां सुकृतबलेन भाविनीनां ।
जायन्ते प्रथमत एव साधनानि । 5/37

8. न सुजनोक्तिरभीष्टविलम्बिनी । 5/40

9. बलवती सुकृतिन् ! भवितव्यता । 5/41

10. विषयरसविभिन्नाः साहसं किं न कुर्युः 5/44

11. अहो विचित्रा गतिरस्ति धातुः 7/24

12. स्वां कृतिं न गणयन्ति साधवः 8/42

13. समये सम्भृतसम्पदा व्यये । 12/36

—०—

परिशिष्टं द्वितीयम्

श्लोकानुक्रमः

—0—

शुद्धिपत्रम्

क्रम	पत्र/पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
1	8/12	रित्यस्त कूटे न	रित्यस्तकूटेन
2	10/16	धन्यममन्यता	धन्यममन्यत
3	10/22	प्रवृत्तेंऽतर भेदभाजो	प्रवृत्तेंऽतरभेदभाजो
4	11/3	धनानाम्	घनानाम्
5	11/8	पितृणाम्	पितॄणाम्
6	11/9	तद्द्दक्	तद्दृक्
7	12/16	न्नरूपसंपद्यपि	न्न रूपसम्पद्यपि
8	15/5	सिद्धयैं	सिद्ध्यै
9	16/9	धराधुरामां	धराधुरामं
10	19/10	मयारुह्य	ययारूह्य
11	21/19	निरोत्स्यते नेति	निरोत्स्य तेनेति
12	23/2	पुष्पाकरमाकर	पुष्पाकरमाकरं
13	24/16	नेति	नैति
14	25/4	नमति मर्त्यं	न मतिमर्त्यै
15	29/18	यदपत्यमनुत्तमाम्	यदपत्यमनुत्तमम्
16	33/2	वहम क्षम	वहमक्षमः
17	35/22	लक्षतया	लक्ष्यतया
18	42/15	हर्म्याजाग्र	हर्म्याग्रजा
19	42/19	तीणविबरा	तीर्णविबरा
20	49/17	आर्दैक	आर्द्रैक
21	49/21	ईषद्दलत्	ईषद्दलत्
22	57/21	शालिनि	शालिनी
23	58/14	ललितनु	ललिततनु
24	58/23	जनभेन	जनमेन
25	59/17	कुञ्मध्यात्	कुञ्जमध्यात्

26	63/21	अङ्कुमाप	अङ्कमाप
27	66/16	प्रियतमा	प्रियतमां
28	67/12	इन	इव
29	67/18	पीडिता मुखम्	पीडितामुपाम्
30	68/13	ज्जवला	ज्ज्वला
31	68/15	तं	तु
32	79/23	आकण्यर्णनेत्र	आकर्णनेत्र
33	88/13	शीर्षे	शीर्षैः
34	90/5	क्षोणीक्षुणा	क्षोणी क्षुण्णा
35	94/24	सभागम	समागम
36	102/12	त्रिपुरापङ्घ्रि	त्रिपुरापराङ्घ्रि